ातक कथा-माला

(पहला भाग)

रामचन्द्र वर्मा

॥

बहुत ही कम हैं
सकी प्रतिपादन-
से उच्च कोटिके
अभावकी पूर्ति-
न की जा रही
कि सभी दृष्टियों-
साहित्यमें परि-
नमें केवल लब्ध-
...साहित्य, विज्ञान,
राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि उपयोगी विषयोंके अच्छे अच्छे ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे। जो लोग १) प्रवेश शुल्क देकर स्थायी ग्राहकोंमें नाम लिखावेंगे, उनसे पुस्तकोंका डाक व्यय न लिया जायगा।

रामचंद्र वर्म्मा,
साहित्य-रत्न-माला कार्य्यालय,
बनारस सिटी।

प्रकीर्णक—२

जातक कथा-माला

पहला भाग



अनुवादक तथा प्रकाशक

रामचन्द्र वर्म्मा

साहित्य-रत्नमाला कार्यालय

बनारस सिटी।



पहली बार ११००]   सं० १९८२   [मूल्य १

मुद्रक—रा० कृ० गुर्जर श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस काशी। १४१७-२२

प्रकाशक—रामचन्द्र वर्मा, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, काशी।

भूमिका

बौद्ध साहित्यमें जातकोंका स्थान बहुत ऊँचा है; क्योंकि बौद्धोंके मनसे जातकोंकी कथाएँ भगवान् बुद्धके पूर्व जन्मोंकी कथाएँ हैं और समय समय पर उन्होंके मुँहसे निकली हैं। बौद्ध दर्शनों तथा धर्मग्रंथोंके अनुसार कोई व्यक्ति सहसा सम्यक्सम्बुद्ध नहीं हो सकता। इसके लिये उसे हजारों लाखों वर्षों तक अनेक योनियोंमें जन्म लेकर दान, शील आदि व्रतों-का पालन करना पड़ता है; और जब उन सब जन्मोंका पुण्य सञ्चित हो जाता है, तब कहीं जाकर मनुष्य गौतमके समान सम्यक् सम्बुद्ध हो सकता है। अपार विभूतियोंसे सम्पन्न सम्यक् सम्बुद्ध होनेके लिये उसे जो अनेक जन्म धारण करने पड़ते हैं, उन जन्मोंमें वह बुद्ध नहीं होता, बल्कि बोधिसत्व या बुद्धांकुरके रूपमें रहता है। बौद्धोंका यह भी विश्वास है कि जब मनुष्य अभिसम्बुद्ध अवस्थाको पहुँचता है, तब उसे अपने तथा दूसरोंके पूर्व जन्मोंकी भी सब बातोंका स्मरण हो जाता है, जिसे वे लोग जाति-स्मर कहते हैं। गौतम बुद्धने यह अलौकिक शक्ति प्राप्त कर ली थी; और इसी लिये जब कोई विशेष अवसर आ पड़ता था, तब लोगों को शिक्षा और उप-देश देनेके लिये वे समय समय पर अपने पूर्व जन्मोंकी कथाएँ सुनाया करते थे और इस प्रकार उन्हें अनुचित कृत्योंसे बचा-

कर निर्वाणकी ओर अग्रसर किया करते थे। उन्होंने महाधर्म-पाल जातक सुनाकर अपने पिताको अपने धर्ममें दीक्षित किया था और चन्द्रकिन्नर जातक सुनाकर यशोधराको यह बतलाया था कि पातिव्रत धर्म पूर्व जन्मोंके संस्कारों से उत्पन्न होता है। इस प्रकार जितने जातक हैं, वे सब किसी न किसी विशिष्ट अवसर पर और किसी न किसी विशिष्ट उद्देश्यसे कहे गए थे।

बौद्धोंके अधिकांश धर्म-ग्रन्थोंकी भाँति मूल जातक भी पाली भाषामें हैं; और उनका प्रचार भारत, लंका, बरमा, स्याम, चीन, जापान आदि समस्त बौद्ध जगतमें है। जातककी संख्याके सम्बन्धमें कई कारणोंसे बहुत मतभेद है। उत्तरी बौद्धोंके यहाँ जातक माला नामक एक संस्कृत ग्रन्थ है, जिसमें केवल चौंतीस जातक हैं। उन्हींका महावस्तु नामक एक और ग्रन्थ है जिसमें अस्सी जातक हैं। तिब्बतकी जातक मालामें ५६६ जातक हैं। परन्तु उत्तरीय बौद्ध शास्त्रोंकी अपेक्षा दक्षिणी बौद्ध शास्त्र बहुत प्राचीन है। दक्षिणी जातकमालामें जातकों-की संख्या ५५० है। पर यह संख्या ठीक नहीं है; क्योंकि इतने जातक पाए नहीं जाते। जातकोंको इस प्रकार ५५० बतलाना कदाचित वैसा ही है, जैसा यह कहना कि अमुक श्रेष्ठीके पास अस्सी करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं, अथवा अमुक आचार्यके पास पाँच सौ शिष्य रहा करते थे। अधिकसे अधिक ५४७ जातक पाए जाते हैं; पर उनमें भी अनेक जातक ऐसे हैं जो आपसमें बहुत कुछ मिलते जुलते हैं और जिनमें

परस्पर बहुत ही कम अन्तर है। जातकार्थवर्णना नामक एक और बहुत बड़ा ग्रन्थ है जिसके कुल आख्यानों आदिकी संख्या तीन हजारके लगभग है। पर साधारणतः जातकोंकी संख्या या तो ५३५ और या ५४७ मानी जाती है। एक बात और है। भिन्न भिन्न ग्रन्थों और संग्रहोंमें अनेक जातक ऐसे भी पाए जाते हैं, जिनकी कथावस्तु एक ही होने पर भी जिनके नाम भिन्न भिन्न हैं। एक ही जातकका एक संग्रहमें कुछ और नाम है, तो दूसरे संग्रहमें कुछ और ही। पर नामोंका यह अन्तर कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। महत्त्व तो वास्तवमें उन कथाओंका है। एक ही जातकका हमने कुछ और नाम रख लिया और आपने कुछ और। प्रत्येक जातकके मध्य या अन्तमें एक गाथा भी अवश्य होती है, जिसमें उस जातकसे निकलनेवाले उपदेशका सार होता है। विद्वानोंका मत है कि इन गाथाओंकी भाषा बहुत ही प्राचीन है, और कहीं कहीं तो ऐसी है कि उसका समझना भी कठिन होता है। जान पड़ता है कि प्राचीन कालमें इन गाथाओंका उपयोग बहुत कुछ कहावतों आदिके समान हुआ करता था; और जो लोग पूरे जातक या कथाएं नहीं याद रख सकते थे, वे समय समय पर यही गाथाएं कह कहकर काम चलाते थे। संस्कृतके अनेक प्राचीन श्लोकों या उनके पदों और तुलसीकृत रामायण आदि की चौपाइयों और दोहों का भी ऐसा उपयोग अब तक देखनेमें आता है।

यद्यपि बौद्धोंका यही विश्वास है कि जितने जातक हैं वे सब स्वयं बुद्ध भगवानके कहे हुए हैं, तथापि प्राचीन साहित्योंके आधुनिक बड़े बड़े विद्वान यह बात नहीं मानते; और उनके ऐसा न माननेके अनेक कारण हैं। उनमेंसे सबसे बड़ा कारण यह है कि सब जातकोंकी भाषा एक सी नहीं है; कुछकी बहुत प्राचीन है, तो कुछकी बहुत अर्वाचीन, और कुछकी दोनोंके मध्यकी। कुछ जातक ऐसे हैं जिनमें बौद्ध भाव प्रायः नहींके समान हैं; और कुछ ऐसे भी हैं जिनकी कथावस्तुके साथ बोधिसत्वका दर्शकके अतिरिक्त और किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। इन तथा दूसरे अनेक कारणोंसे आधुनिक विद्वानोंने यह मत स्थिर किया है कि ये सब जातक समय समय पर रचे गए हैं और इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई है। कथाके मिससे उपदेश देनेकी प्रथा बहुत पुरानी है; और उसी प्रथाका अनुसरण करते हुए समय समय पर अनेक उपदेशपूर्ण कथाएँ रची गई हैं जो किसी न किसी प्रकार संग्रहमें आ गई हैं। जो लोग यह जानते हैं कि मानव-समाजमें कथाओं और कहानियों आदिका आरम्भ और विकास किस प्रकार हुआ है, वे सहजमें ही समझ सकते हैं कि जातकोंका मूल क्या है। सभी देशोंमें प्रायः पहले पशुओं, पक्षियों और वृक्षों आदिके सम्बन्धकी कथाएँ गढ़ी जाती हैं। फिर भूतों, प्रेतों और मनुष्यों आदिके सम्बन्धकी कथाएँ बनती हैं; और तब सज्जनता, सच्चरित्रता, दानशीलता आदि गुणोंके आधार

पर कथाएँ बनाई जाती हैं। उनमेंसे जो साधारण होती हैं, वे नष्ट हो जाती हैं और जो अच्छी होती हैं, वे बहुत दिनों तक चलती रहती हैं। और उनमें भी जो बहुत अच्छी होती हैं, उन्हें चिरस्थायी करनेके लिये धर्म अथवा किसी धार्मिक आचार्यके साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है।

जातकोंके रचना-कालका ठीक ठीक निर्णय करना भी कुछ सहज काम नहीं है। सब जातक भगवान बुद्धके कहे हुए नहीं माने जाते, तथापि अनेक जातक अवश्य ऐसे हैं जो स्वयं बुद्धदेवके कहे हुए हैं; और बहुतसे जातक ऐसे हैं, जिनकी रचना भगवान बुद्धके निर्वाणके थोड़े ही दिनों बाद उनके शिष्यों और अनुयायियोंने की थी। जिस प्रकार और अनेक प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंमें रूपकोंकी भरमार देखनेमें आती है, उसी प्रकार जातकोंमें भी रूपक कथाएँ मिलती गई हैं। पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि ई० पू० तीसरी शताब्दीसे पहले ही अधिकांश जातकोंकी रचना और संग्रह हो गया था। केवल संग्रह ही नहीं, बल्कि उस समय तक बौद्ध जगतमें उनका अच्छा प्रचार भी हो चुका था। कदाचित कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं, जिनकी रचना भगवान बुद्धसे भी पहले ही हो चुकी थी और उन्होंने उनकी आवृत्ति मात्र की थी। अनेक कथाएँ ऐसी भी हैं जो रामायण और महाभारत तकमें पाई जाती हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये जातक कितने प्राचीन हैं अथवा हो सकते हैं।

रामायण और महाभारतके अतिरिक्त बृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश आदिकी अनेक कथाओंका भी जातकोंसे बहुत कुछ साम्य है; और अनेक कथाएँ तो प्रायः ज्योंकी त्यों हैं। बहुत से जातक ऐसे भी हैं जो सुप्रसिद्ध ईसपकी कहानियोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इसके अतिरिक्त यूनान देशमें ऐसी बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं, जो इन जातकोंसे बहुत मिलती हैं। युरोपके अन्यान्य अनेक देशोंमें भी ऐसी बहुत सी दन्तकथाएँ और कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनका इन जातकोंसे कोई अन्तर नहीं है। इसके कई मिले जुले कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि इनमेंसे बहुत सी कथाएँ मूल आर्योंकी सम्पत्ति हैं। उनके वंशज जहाँ जहाँ गए, वहाँ वहाँ वे अपने साथ कुछ कहानियाँ आदि भी लेते गए, जो वंशपरम्परासे अब तक उनमें प्रचलित हैं। दूसरा कारण यह है कि मानव स्वभाव सब जगह प्रायः समान रूपसे काम करता है। जिस प्रकारकी कहानियाँ हम आप यहाँ बैठे गढ़ते हैं, उसी प्रकारकी या उनसे मिलती जुलती कहानियाँ दूर देशोंमें रहनेवाले और लोग भी गढ़ सकते हैं और गढ़ ही लेते हैं। तीसरा कारण यह भी है कि जब दो जातियोंका परस्पर सम्बन्ध होता है, तब उनमें अनेक प्रकारके पदार्थोंका आदान-प्रदान और विनिमय हुआ करता है, जिसके कारण एक देशकी कहानियाँ सहजमें दूसरे देशोंमें पहुँच जाती हैं। ऐसी दशामें यदि बहुतसे जातकोंकी कथावस्तु अन्यान्य धर्मों-

अथवा देशोंकी कहानियोंकी कथावस्तुसे मिल जाय, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। अब यह निर्णय करना विद्वानोंका काम है कि अमुक कथा अमुक जातिकी सम्पत्ति है और अमुक आख्यान अमुक देशकी सम्पत्ति है। तो भी साधारणतः इतना अवश्य माना जाता है कि ईसाइयोंके बाइबिल आदि ग्रन्थों पर जातकों तथा दूसरे बौद्ध ग्रन्थोंका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है; और प्राचीन ईसाइयोंमें भगवान् बुद्धदेवका बहुत अधिक आदर था।

जो हो, जातकोंके महत्वपूर्ण और उपदेशपूर्ण होनेमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। बौद्धोंके लिये तो जातकोंका धार्मिक महत्व है ही, पर भारतवासी मात्रके लिये भी वह जातीय, राष्ट्रीय तथा नैतिक दृष्टिसे बहुत अभिमानकी चीज है। यदि केवल कथाओंकी दृष्टिसे देखा जाय, तो भी वे अति प्राचीन सिद्ध होते हैं। नीतिकी दृष्टिसे तो उनकी उपयोगिताका पूछना ही क्या है। सभी जातक एकसे एक बढ़कर उपदेशपूर्ण हैं। इनसे छोटे बड़े सभी कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। किसी किसी जातकके पाठसे मिलनेवाला उपदेश और आनन्द तो अपूर्व ही होता है। विश्वप्रेमकी शिक्षाकी तो वे मानों खान ही हैं। बौद्ध धर्मका यह मुख्य सिद्धान्त है कि जीव मात्रको अपने समान समझना चाहिए; और अधिकांश जातकोंमें किसी न किसी रूपमें और किसी न किसी अंश तक इसी सिद्धान्तकी शिक्षा दी गई है। ऐसी शिक्षाओंका अधिकसे

अधिक आदर और अधिकसे अधिक प्रचार सबको वांछनीय होना चाहिए।

जातकोंके अध्ययनसे दूसरा लाभ यह होता है कि बौद्ध कालके भारतकी बहुत सी बातोंका पता अनायास ही लग जाता है। उस समय अथवा उससे कुछ पहलेके लोग कैसे होते थे, उनके आचार विचार आदि कैसे थे, उनकी सभ्यता किस कोटिकी थी, उनमें विद्या और वाणिज्य आदिका कैसा और कहाँ तक प्रचार था, सामाजिक और राजनीतिक आदि दृष्टियोंसे वे कहाँ तक उन्नत थे, आदि आदि अनेक बातोंका इन जातकोंसे बहुत अच्छा पता चलता है। जातकोंसे जाना जाता है कि उन दिनों भारतमें बड़े बड़े नगर थे, जिनमें धनवान लोग बड़े बड़े प्रासादोंमें रहा करते थे; बड़े बड़े व्यापारी जहाजों पर माल लादकर विदेशोंमें बेचने जाया करते थे; तक्षशिला और काशी आदि नगरोंमें बड़े बड़े विश्वविद्यालय थे, जिनमें सभी प्रकारकी ऊँचीसे ऊँची शिक्षा दी जाती थी; विद्यार्थियोंको सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करनी पड़ती थी; दरिद्र विद्यार्थियोंके निर्वाहके लिये दानकी व्यवस्था थी; अन्यायी राजाओंको प्रजा या तो मार डालती थी और या राजच्युत कर देती थी; आदि आदि। तात्पर्य यह कि इन जातकोंमें प्राचीन भारतका बहुत अच्छा इतिहास भरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त इन जातकोंसे बौद्ध धर्मके सम्बन्धकी भी अनेक बातोंका पता चलता है। इनके पाठसे बौद्धोंके इहलोक, परलोक, स्वर्ग, नरक, देवता,

कर्म आदिके सम्बन्धके बहुत से विचार और सिद्धान्त भी मालूम होते हैं। तात्पर्य यह कि जातक अनेक दृष्टियोंसे हमारे लिये बहुत ही उपयोगी हैं।

मेरा बहुत दिनोंसे विचार था कि जातक-मालाकी कुछ चुनी चुनी कथाएँ एकत्र करके हिन्दी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करूँ। आज ईश्वरकी कृपासे मेरा वह विचार पूरा हो गया। पर यह संग्रह नवयुवकों और विद्यार्थियोंके लिये तैयार किया गया है और इसमें बीच बीचमें बहुत सी कथाएँ छोड़ भी दी गई हैं। किसी कथाके आरम्भमें यह भी नहीं बतलाया गया है कि यह कथा किस प्रसंग पर और किससे कही गई थी और इसके कहनेका क्या परिणाम हुआ था। जहाँ तक हो सका है, बौद्धोंके पारिभाषिक शब्द भी बचाए गए हैं; पर जो शब्द नहीं बचाए जा सके हैं, उनकी व्याख्या भी साथ ही साथ कर दी गई है। यदि यह संग्रह हिन्दी पाठकोंको पसन्द आया, तो या तो इसी प्रकारका इसका दूसरा भाग भी हिन्दी-प्रेमियोंकी सेवामें उपस्थित किया जायगा; और या कई भागोंमें इसका एक विस्तृत, विशद और सर्वांगपूर्ण संस्करण प्रकाशित करनेका उद्योग किया जायगा।

अन्तमें मैं यह निवेदन कर देना भी आवश्यक समझता हूँ कि यह ग्रन्थ फोस्बेल द्वारा सम्पादित जातकार्थवर्णनाके आधार पर लिखे हुए श्रीयुक्त ईशानचन्द्र घोषवाले बँगला

जातक तथा फ्रान्सिस और थामस कृत अँगरेजी Jataka Tales की सहायतासे तैयार किया गया है। इसके लिये मैं इन अनुवादकों तथा ग्रन्थकारोंका बहुत ही कृतज्ञ हूँ और इन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

रामचन्द्र वर्म्मा।

जातक-सूची

—:o:—

नमः बोधिसत्वाय

जातक कथा-माला



पहला भाग



अपरणक* जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीमें ब्रह्मदत्त नामक एक राजा था। उसके समयमें बोधिसत्वने एक वणिकके घरमें जन्म लिया था। बोधिसत्व बड़े होने पर व्यापार करने लगे। उनके पास पाँच सौ बैल-गाड़ियाँ थीं। उन्हीं गाड़ियों पर माल लादकर वे कभी पूरब और कभी पच्छिम व्यापार करनेके लिये जाया करते थे। उन दिनों वाराणसीमें एक और युवक वणिक रहता था। उसकी बुद्धि बहुत मोटी थी और वह यह नहीं जानता था कि किस अवसर पर क्या करना चाहिए।

एक बार बोधिसत्वने बहुत से बहुमूल्य पदार्थ गाड़ियों पर लादकर किसी दूर देशको जानेका विचार किया। उसी समय उन्होंने सुना कि वह निर्बोध वणिक भी पाँच सौ बैल-गाड़ियाँ लेकर उसी देशको जानेका विचार कर रहा है। बोधिसत्वने

---

* अपरणक = ध्रुव सत्य।

सोचा कि यदि हम दोनोंकी एक हजार बैल-गाड़ियाँ एक साथ ही एक मार्गसे जायँगी, तो अनेक कठिनाइयाँ होंगी। मालसे लदी हुई इतनी गाड़ियोंके पहियोंसे सड़कें खराब हो जायँगी। एक हजार आदमियों और दो हजार बैलोंके खाने पीनेके लिये सामग्री एकत्र करना भी असम्भव हो जायगा। इसलिये यदि हम दोनोंमेंसे एक आगे और दूसरा उसके कुछ दिनों बाद जाय, तो अच्छा हो। यह सोचकर उन्होंने उस मूर्ख वणिकको अपने पास बुलवाया और सब बातें समझाकर कहा कि हम दोनों आदमियोंका एक साथ जाना ठीक नहीं है। अतः तुम सोचकर बतलाओ कि तुम पहले जाओगे या पीछे। उस वणिकने मनमें सोचा कि मेरा पहले जाना ही अच्छा है; क्योंकि पहले जानेमें सड़कें ठीक मिलेंगी, जिससे गाड़ियोंके चलनेमें कोई कठिनता न होगी। बैलोंको भी अच्छी और यथेष्ट घास मिलती जायगी। हम लोगोंको अच्छे अच्छे फल फूलादि मिलते जायँगे। नहाने और पीनेके लिये स्वच्छ जल मिलता रहेगा; और हम मनमाने मूल्य पर माल खरीद और बेच सकेंगे। इसलिये उसने बोधिसत्वसे कहा कि मैं पहले जाऊँगा।

बोधिसत्वने कहा—"अच्छी बात है। तुम्हीं पहले चले जाओ।" उन्होंने सोचा कि पीछे जानेमें ही सुभीता है। इस अबोध वणिककी गाड़ियोंके पहियोंसे ऊबड़ खाबड़ रास्ता बराबर हो जायगा। इसके बैल पकी घास खा जायँगे और तब उनके डंठलोंसे जो नई नई हरी पत्तियाँ निकलेंगी, वही हमारे बैल खायँगे। हमें भोजनके लिये भी ताजे फल मूल मिलेंगे। हमें जलका भी कहीं अभाव न होगा। इसके साथी जो कूएँ खोदेंगे,

उन्हींमेंसे हम पानी ले लेंगे। हमें बहुतसे लोगोंके साथ मोल भाव करनेके लिये सिर भी न खपाना पड़ेगा। यह जिस मालका जो मूल्य निश्चित कर जायगा, उसी मूल्य पर हम भी माल खरीद और बेच लेंगे।

इसके उपरान्त वह अबोध वणिक पाँच सौ बैल-गाड़ियों पर माल लादकर चल पड़ा और बस्तीसे निकलकर एक जंगलके पास पहुँचा। वह जंगल बहुत ही बीहड़ था। उसमें साठ योजन तक कहीं पानी नहीं मिलता था। उसमें बहुत से यक्ष और राक्षस आदि रहा करते थे। उस वणिकके सेवकोंने उस जंगलमें प्रवेश करनेसे पहले बहुत बड़े बड़े बरतन पानीसे भरकर अपनी गाड़ियों पर रख लिए थे। जिस समय वे लोग जंगलके बीचमें पहुँचे, उस समय यक्षोंके राजाने सोचा कि इस अबोध वणिकको यह समझा देना चाहिए कि इस जंगलमें पानी ढोकर ले जाना व्यर्थ है। उस दशामें यह सारा जल फेंक देगा। फिर जिस समय इसके आदमी और बैल आदि प्यासे मरने लगेंगे, उस समय हम लोग सहजमें ही इन सबको मार डालेंगे और मनमाना मांस खायँगे।

यह चाल सोचकर यक्षराजने मायाके बलसे एक बहुत सुन्दर गाड़ी बनाई। दो अच्छे सफेद बैल उसे खींचने लगे। यक्षोंका राजा एक सम्पन्न पुरुषका वेश बनाकर उस पर बैठ गया। उसके मस्तक पर श्वेत और नील पद्मोंकी माला थी, उसके बाल और कपड़े भीगे हुए थे और छकड़ेके पहियोंमें बहुत सा कीचड़ लगा हुआ था। उसके आगे पीछे दस बारह यक्ष सेवकोंके वेशमें तीर, तलवार, ढाल आदि लेकर चल रहे

थे। उनके भी बाल और कपड़े भीगे हुए थे। उनके माथे पर भी नील और श्वेत कमल थे, मुँहमें मृणाल थे और पैरोंमें कीचड़ लगा हुआ था।

दल बाँधकर चलनेवाले वणिकों या सार्थवाहोंमें यह प्रथा थी कि जब सामनेकी हवा चलती थी, तब धूलसे बचनेके लिये दलपति सबसे आगे रहता था; और जब पीछेकी ओरसे हवा आती थी, तब वह सबके पीछे चलता था। जिस समयकी यह बात है, उस समय हवा सामने की थी; इसलिये वह अबोध वणिक अपने दलके आगे आगे चल रहा था। उसके पास पहुँचकर यक्षराजने अपनी गाड़ी एक ओर कर ली और बहुत ही मधुर भावसे उससे पूछा—"आप कहाँसे आ रहे हैं ?" यक्षराजकी गाड़ीके लिये रास्ता करनेके विचारसे वणिकने अपनी गाड़ी एक ओर कर ली और कहा—"मैं वाराणसीसे आता हूँ। मैं देखता हूँ कि आपके मस्तक और हाथमें पद्म हैं; और आपके सेवक मृणाल चबा रहे हैं। आप लोगोंके कपड़े भीगे हुए हैं और आपकी गाड़ीके पहियोंमें कीचड़ लगा है। क्या मार्गमें कहीं पानी बरसा है और आपको आते समय पद्मोंसे भरा हुआ कोई जलाशय मिला है ?"

यक्षराजने उत्तर दिया—"यह पास ही जो हरियाली दिखाई देती है, उसके आगे सारे वनमें जल ही जल है। वहाँ सदा वृष्टि हुआ करती है, तालाब आदि सदा जलसे भरे रहते हैं और मार्गमें दोनों ओर पद्मोंसे भरे हुए सरोवर हैं।" बस इसी प्रकारकी बातें करते हुए वे लोग चले जा रहे थे। यक्षराजने उस वणिकसे पूछकर जान लिया कि वह वणिक कहाँ जाता

है और क्या क्या माल लिए जाता है। उसने एक गाड़ीकी ओर संकेत करते पूछा—"इस पर क्या है?" वणिक ने कहा—"पानी रखा है।" यक्षराजने कहा—"आप पानी लेते आए, यह आपने अच्छा ही किया; क्योंकि यहाँ तक तो पानीकी आवश्यकता पड़ती ही है। पर अब पानीकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, आगे बहुत पानी मिलेगा। अब आप पानीके ये बरतन फेंकवा दें, बोझ हलका हो जायगा और गाड़ी जल्दी जल्दी चल सकेगी।"

फिर थोड़ी देर ठहरकर यक्षराजने कहा—"अच्छा, अब आप आगे बढ़िए। मैं भी जाता हूँ। बातों बातोंमें बहुत सा समय बीत गया।" इतना कहकर यक्ष वहाँसे चल पड़ा। जब उसने देखा कि वणिक और उसके साथी आँखोंसे ओझल हो गए, तब वह अपने स्थान को चला गया।

इधर उस मूर्ख वणिकने यक्षके परामर्शके अनुसार पानी के सब बरतन तोड़ डाले और पीनेके लिये एक बूँद भी पानी अपने पास न रखा। इस प्रकार वह अपना बोझ हल्का करके आगे बढ़ा। वह बहुत दूर निकल गया, पर फिर भी उसे कहीं जलका नाम तक न मिला। धीरे धीरे सब लोग प्यासके मारे व्याकुल होने लगे। अंतमें सूर्यास्तके समय सब गाड़ियाँ रोक दी गईं और उनके बैल खोल दिए गए। गाड़ियोंके पहियोंमें बैलोंको बाँधकर और उन गाड़ियोंसे स्कंधावार बनाकर सब लोग बीचमें बैठ गए। पर न तो मनुष्योंको और न उन पशुओंको वहाँ विश्राम मिला। सभी भूख और प्याससे विकल होकर भूमि पर पड़ गए।

इतनेमें अंधकार हो गया। सब यक्ष अपने नगरसे निकल आए और उन सब मनुष्यों तथा पशुओंको मारकर और उनका मांस खाकर चले गए। इस प्रकार उस वणिककी मूर्खताके कारण उसके दलके सभी प्राणियोंके प्राण गए। उनकी ठठरियाँ चारों ओर बिखरी पड़ी थीं। हाँ, उसकी गाड़ियाँ और उन गाड़ियों पर लदा हुआ सब माल ज्योंका त्यों पड़ा था; उन्हें किसीने छूआ तक न था।

उस अबोध वणिकके जानेके प्रायः डेढ़ मास बाद बोधिसत्व अपनी पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर वाराणसीसे चल पड़े और यथा समय उसी जंगलमें पहुँचे। उन्होंने भी वहां पहुँचकर बड़े बड़े बरतनोंमें बहुत सा पानी भर लिया और तब अपने सब सेवकोंको अपने शिविरमें बुलाकर उनसे कहा—"अब आगे हम लोगोंको जिस जंगलमेंसे होकर जाना पड़ेगा, उसमें कहीं जल न मिलेगा। उस जंगलमें बहुतसे विषवृक्ष भी हैं, इसलिये तुम लोग बिना मेरी अनुमतिके कहीं एक चुल्लू भी पानी मत पीना और न बिना मुझसे पूछे कहीं कोई बिना जाना हुआ पत्ता, फूल या फल ही खाना।"

अपने सेवकोंको इस प्रकार सावधान करके बोधिसत्वने उस भीषण वनमें प्रवेश किया। जब वे उस जंगलके मध्यमें पहुँचे, तब यक्षोंका राजा फिर उसी प्रकार वेश बनाकर उनके पास आया। बोधिसत्वने उसे देखते ही समझ लिया कि यह मनुष्य नहीं, यक्ष है। उन्होंने सोचा कि इस जंगलमें इतना पानी कहाँसे आया; इसकी आँखें इतनी लाल और स्वरूप इतना भीषण क्यों है; भूमि पर इसकी छाया क्यों नहीं पड़ती आदि।

उन्होंने यह भी समझ लिया कि वह मूर्ख वणिक जरूर इसकी चालमें आ गया होगा और उसे तथा उसके साथियोंको इसने खा डाला होगा। जब उस यक्षने फिर उसी प्रकारकी बातें करके उन्हें जल फेंकनेका परामर्श दिया, तब उन्होंने उस यक्षसे कहा—"हम वणिक हैं। हम बिना अपनी आँखोंसे जलाशय देखे अपना जल नहीं फेंक सकते। जब हम कहीं जल देख लेंगे, तब अपना बोझ हलका करनेके लिये आप ही जल फेंक देंगे; तुमसे परामर्श लेने न जायँगे।"

जब यक्षने देखा कि दाँव खाली गया, तब वह आगे बढ़ा और बोधिसत्त्वकी आँखोंसे दूर होकर अपने घर चला गया। उस समय बोधिसत्त्वके कुछ सेवकोंने उनसे कहा—"अभी यह आदमी कह गया है कि उस नील वनके पास सदा वृष्टि होती है उसके साथियोंके सिर, हाथ और गलेमें इतने कमल थे और वे मृणाल चबा रहे थे। यदि यहाँ इतना अधिक जल है, तो आप अपने पासका जल फेंक क्यों नहीं देते जिससे बोझ हलका हो जाय?" इस पर बोधिसत्त्वने सब गाड़ियोंको रोककर और अपने सब साथियोंको एकत्र करके पूछा—"क्या तुम लोगोंने और भी कभी सुना था कि इस मरुभूमिमें जलाशय है?" उन्होंने कहा—"नहीं, यहाँ तो जलाशय नहीं है। और इसी लिये लोग इसे निरुदक वन कहते हैं।" बोधिसत्त्वने कहा—"वे लोग कह गए हैं कि उस नील वनमें वृष्टि होती है। पर जहाँ वृष्टि होती है, उसके चारों ओर दूर दूर तक ठंढी हवा चलती है। जिस बादलमें पानी बरसता है, वह बादल भी दूरसे ही दिखलाई पड़ता है। तुम लोगोंको ठंढी हवा लगती है? या

कहीं बादल दिखलाई देता है ?" उन लोगोंने कहा—"जी नहीं।" बोधिसत्वने पूछा—"कहीं बिजलीकी कौंध या बादल दिखाई देता है ? कहीं बादल की गरज भी सुनाई देती है ?" उन्होंने कहा—"जी नहीं।

बोधिसत्वने कहा—"अच्छा सुनो, अब मैं तुमको इसका भेद बतलाता हूँ। जो लोग अभी आकर हमें पानी फेंक देनेके लिये कहते थे, वे मनुष्य नहीं, यक्ष हैं। वे चाहते थे कि हम लोग जल फेंककर जब प्यासे मरने लगें, तब वे हम लोगोंको मार मारकर खा जायँ। मैं तो समझता हूँ कि हम लोगोंसे पहले जो युवक वणिक चला था, उसने इन लोगोंकी बातोंमें आकर जल फेंक दिया होगा और अपने साथियों सहित इन लोगोंके हाथों वह मारा गया होगा। संभव है, आज ही हम लोगोंको उसकी मालसे लदी हुई सब गाड़ियाँ भी यहीं कहीं मिल जायँ। तुम लोग जल्दी जल्दी आगे बढ़ो। पर देखो, कहीं एक बूँद भी जल व्यर्थ न फेंकना।"

सब लोगोंने जल्दी जल्दी पैर बढ़ाए। थोड़ी ही देरमें वे लोग वहाँ पहुँच गए, जहाँ उस मूर्ख वणिककी मालसे भरी गाड़ियाँ पड़ी थीं। बोधिसत्वने वहीं विश्राम करनेके विचारसे अपने सेवकोंको गाड़ियोंके बैल खोल देनेकी आज्ञा दी। गाड़ियोंसे घेरकर स्कंधावार बनाया गया। जब सब लोग खा पी चुके, तब बोधिसत्वने बैलोंको स्कंधावारके अन्दर करके अपने सेवकोंको चारों ओर नियुक्त कर दिया। उनमेंसे कुछ बलवान लोग हाथमें तलवार लेकर रखवाली करने लगे। इस प्रकार वह रात बीत गई।

प्रातःकाल उठकर बोधिसत्वने फिर सब बातोंकी व्यवस्था की। उनकी जो जो गाड़ियाँ टूट फूट गई थीं, उन्हें वहीं छोड़ कर उस मूर्ख वणिककी अच्छी अच्छी गाड़ियाँ ले लीं। अपनी सस्ते दामकी चीजें वहीं रखकर उनके बदलेमें उस वणिकको बढ़िया और अधिक मूल्यकी चीजे लाद लीं। वहाँ से आगे बढ़कर वे अपने निर्दिष्ट स्थानमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपनी चीजें दूने और चौगुने दामोंमें वेचीं और बहुत सा आर्थिक लाभ करके अपने देशको लौट आए। उनके साथियों-मेंसे एक भी नष्ट न हुआ।

चुल्लश्रेष्ठि जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीमें ब्रह्मदत्त नामक एक राजा रहता था। उसके समयमें बोधिसत्वने श्रेष्ठि कुलमें जन्म लिया था। जब बोधिसत्व बड़े हुए, तब वे भी श्रेष्ठि के पद पर नियुक्त हुए। लोग उनको चुल्लश्रेष्ठि (छोटा सेठ) कहा करते थे। वे बहुत ही विद्वान् और बुद्धिमान् थे और शकुन आदि देखकर ही शुभाशुभका विचार कर लिया करते थे। एक दिन वे राजाकी सेवामें जा रहे थे। मार्गमें उनको एक मरा हुआ चूहा दिखलाई दिया। उन्होंने उसी समय आकाशके ग्रहों और नक्षत्रों आदिकी स्थितिके विचारसे गणना करके सोचा कि यदि उत्तम कुलका कोई बुद्धिमान् व्यक्ति इस समय इस मरे हुए चूहेको उठा ले जाय, तो वह व्यवसाय करके अपने परिवारके भरण पोषणके लिये यथेष्ट धन उपार्जित कर सकता है।

उस अवसर पर उस मार्गसे एक भले घरका पर दरिद्र युवक जा रहा था। उसने उनकी यह बात सुनकर मनमें सोचा कि ये बिना अच्छी तरह समझे बूझे कभी कोई बात नहीं कहते। अतः मैं इस मरे हुए चूहेको ले चलकर ही अपने भाग्यकी परीक्षा करूँ। इसलिये वह उस मरे हुए चूहेको उठाकर ले चला। पास ही एक दूकानदार अपनी पाली हुई बिल्लीके खिलानेके लिये कुछ ढूँढ रहा था। उसने उस युवकको एक पैसा देकर वह चूहा उससे ले लिया।

युवकने एक पैसेका गुड़ लिया और एक घड़ा पानी लेकर एक जगह बैठ गया। उस मार्गसे माली लोग वनसे फूल चुन कर लाया करते थे। जब थके हुए माली वनसे लौटे, तब उसने उन्हें थोड़ा थोड़ा गुड़ देकर ठंढा जल पिलाया। माली भी प्रसन्न होकर उसे थोड़े थोड़े फूल देते गए। युवकको वह फूल बेचने पर जो पैसे मिले, उन्हीं पैसोंसे उसने दूसरे दिन और गुड़ ले लिया और पहले दिनकी भाँति मालियोंको थोड़ा थोड़ा गुड़ देकर जल पिलाना आरम्भ किया। उस दिन मालियोंने उसे फूलोंके कुछ ऐसे पौधे दिए जिनमें कुछ फूल लगे हुए थे। इस प्रकार उन फूलों और पौधोंको बेचकर दो चार दिनमें उसने आठ पैसे इकट्ठे कर लिए।

एक दिन बहुत पानी बरसा और हवा चली जिससे राजाके बागमें वृक्षों आदिकी बहुत सी सूखी हुई डालियाँ और पत्तियाँ आदि आ गिरीं। माली वह कूड़ा करकट साफ करनेकी चिन्तामें ही था कि इतनेमें वह युवक वहाँ जा पहुँचा और बोला—"यदि तुम ये सब सूखी डालियाँ आदि मुझे दे दो, तो मैं इन सबको अभी यहाँसे उठा ले जाऊँ और तुम्हारा सारा बाग बातकी बातमें साफ कर दूँ।" मालीने उसकी बात मान ली। वह युवक तुरन्त एक ऐसे स्थान पर चला गया जहाँ महल्ले के लड़के खेल रहे थे। उसने उन लड़कों को थोड़ा थोड़ा गुड़ दिया और कहा कि तुम लोग मेरे साथ राजाके बागमें चलकर कुछ झाड़ झंखाड़ साफ कर दो। लड़के गुड़ पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बागका सब झाड़ झंखाड़ साफ करके बाहर एक जगह उसका ढेर लगा दिया। उस दिन

राजाके कुम्हारके घर जलानेके लिये ईंधन नहीं था। वह अपना आँवाँ सुलगानेके लिये ईंधन लेने निकला था। उसने उस युवकको सोलह पैसे और कुछ हाँड़ियाँ आदि देकर उससे डालियों और पत्तोंका वह ढेर ले लिया।

अब उस युवकके पास चौबीस पैसे हो गए। उसने एक और उपाय सोचा। उन दिनों वाराणसीमें पाँच सौ घसियारे रहते थे जो जंगलमें घास खोदने जाया करते थे। युवक नगर के बाहर एक स्थान पर पानीके कई घड़े भरकर बैठ गया और उन घसियारोंको पानी पिलाने लगा। घसियारोंने प्रसन्न होकर उससे कहा कि यदि तुम्हारा कोई काम हो तो बतलाओ, हम लोग कर दें। युवकने उत्तर दिया—"अच्छा. जब समय आवेगा, तब मैं कहूँगा।"

उस समय उस युवककी दो व्यापारियोंके साथ बहुत मित्रता हो गई थी। उनमेंसे एक स्थलमें ही रहकर व्यापार करता था और दूसरा जल मार्ग से व्यवसाय करता था। एक दिन स्थलके व्यापारी ने उससे कहा—"कल एक व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर यहाँ आवेगा।" यह समाचार पाकर उसने घसियारोंसे कहा—"कल तुम सब लोग मुझे एक एक पूला घास देना; और जबतक मेरी सब घास न बिक जाय, तब तक तुम लोग अपनी घास न बेचना।" घसियारोंने उसकी यह बात मान ली। दूसरे दिन जब वह घोड़ोंका व्यापारी नगरमें आया, तब उसे कहीं घास न मिली। अन्तमें उसने युवकसे एक हजार पैसे देकर सब घास ले ली।

इसके कुछ दिनों बाद उस युवक को जल मार्गके व्यापारी

से पता लगा कि बन्दरमें एक बड़ा जहाज माल लेकर आया है। उस समय उसने एक और उपाय सोचा। उसने तुरन्त एक गाड़ी किराए पर ली और उस पर चढ़कर बहुत ठाठसे बन्दरमें जा पहुँचा। वहाँ उसने भाव ताव ठीक करके उस जहाज का सारा माल ले लिया, बयानेमें अपने नामकी अँगूठी दे दी और पास ही एक तंबू खड़ा करके उसमें जा बैठा। उसने अपने आदमियोंसे कह दिया कि जब कोई व्यापारी मुझसे मिलने आवे, तो उसे तीन तीन सेवक मेरे पास पहुँचाने आवें। जब नगर में यह समाचार पहुँचा कि बन्दरमें एक बड़ा जहाज माल लेकर आया है, तब वाराणसीके एक सौ व्यापारी वह माल लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। जब उन्होंने सुना कि एक सेठने सारे मालका बयाना कर लिया है, तब वे ढूँढ़ते हुए उस युवकके पास पहुँचे। वहाँ बहुत से नौकर चाकर और खूब ठाठ बाठ देखकर उन लोगोंने अपने मनमें सोचा कि यह कोई बहुत बड़ा महाजन है। एक एक करके सब व्यापारी उस युवकसे मिले। उन सबने जहाजके मालमेंसे एक एक अंश पानेके लिये अपने अपने लाभमेंसे उस युवकको एक एक हजार रुपया देना मंजूर किया। इसके उपरान्त उस युवकका जो अंश बच रहा, वह भी उन सबने नफेके एक एक हजार रुपए देकर ले लिया। इस प्रकार वह युवक दो लाख रुपए लेकर वाराणसी लौट आया।

अब उस युवकने सोचा कि बोधिसत्वके परामर्शके अनुसार काम करनेसे ही मेरा इतना भाग्य चमका है। अतः वह कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये एक लाख रुपए भेंट देनेके

निमित्त उनके पास पहुँचा। बोधिसत्वने उससे पूछा—"तुम्हें इतना धन कैसे मिला?" इस पर उस युवकने आदिसे अन्त तक अपनी सारी कथा कह सुनाई। सब बातें सुनकर बोधिसत्व ने सोचा कि इस बुद्धिमान् युवकको अपने ही पास रखना चाहिए। उन्होंने उसके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। बोधिसत्वको और कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये उनकी सारी सम्पत्तिका अधिकारी भी वही युवक हुआ। जब बोधिसत्व अपने कर्मों का फल भोगनेके लिये शरीर त्यागकर दूसरे लोक में गए, तब वह युवक वाराणसी का महाश्रेष्ठी हो गया।

देवधर्म जातक ।

प्राचीन कालमें वाराणसीमें ब्रह्मदत्त नामक एक राजा राज्य करता था । बोधिसत्वने उसके पुत्रके रूपमें जन्म लिया था । उस समय उनका नाम महिंसासकुमार था । जब वे दो तीन वर्षके हुए, तब उनका एक और छोटा भाई उत्पन्न हुआ । राजाने उसका नाम चन्द्रकुमार रखा । जब चन्द्रकुमार भी दो तीन वर्षका हुआ, तब उसकी माताका देहान्त हो गया । अब ब्रह्मदत्तने दूसरा विवाह कर लिया ।

कुछ दिनोंमें ब्रह्मदत्तकी दूसरी रानीको भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम सूर्यकुमार रखा गया । उस नए पुत्रके जन्मसे प्रसन्न होकर राजाने रानीसे कहा—"तुम इस पुत्रके लिये जो चाहे, सो वर माँग लो ।" रानीने कहा—"अच्छा, जब समय आवेगा, तब मैं आपको इस बातका स्मरण दिलाकर आपसे वर माँग लूँगी ।"

जब समय पाकर सूर्यकुमार कुछ बड़ा हो गया, तब एक दिन रानीने राजासे कहा—"महाराज, जब सूर्यकुमारका जन्म हुआ था, तब आपने मुझसे वर माँगनेके लिये कहा था । अब मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि आप इसीको राजपद दीजिए ।" राजाने कहा—"मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी है । उसे छोड़कर मैं तुम्हारे पुत्रको राज्य नहीं दे सकता ।" पर रानी किसी प्रकार मानती ही नहीं थी और दिन रात इसके लिये राजाको तंग किया करती थी । राजाको आशंका हुई कि रानी

कहीं अपनी सौतके लड़कोंका अनिष्ट करने के लिये कोई कुचक्र न रचे। उन्होंने महिंसासकुमार और चंद्रकुमारको बुलाकर कहा—"जब सूर्यकुमारका जन्म हुआ था, तब मैंने तुम्हारी विमाताको एक वर देना चाहा था। अब वह उस वरमें सूर्यकुमारके लिये राजपद माँगती है। पर मैं नहीं चाहता कि सूर्यकुमार राजा हो। स्त्रियोंकी बुद्धि बहुत नाशक होती है। मुझे भय है कि रानी कहीं तुम लोगोंका सर्वनाश करनेके लिये कोई उपाय न कर बैठे। अतः इस समय तुम लोग वनमें जाकर रहो। मेरी मृत्युके उपरान्त शास्त्रके अनुसार तुम्हीं लोगोंको यह राज्य मिलेगा। उस समय तुम लोग आकर राज्याधिकार ले लेना।" इस प्रकार आँखों में आँसू भरकर राजाने अपने दोनों पुत्रोंका मुँह चूमा और उनको वनमें भेज दिया।

जिस समय दोनों राजकुमार अपने पिताके चरण छूकर वन जानेके लिये प्रासादसे बाहर निकले, उस समय सूर्यकुमार आँगनमें खेल रहा था। अपने बड़े भाइयोंके जानेका कारण सुनकर वह भी उन दोनोंके साथ वनमें जानेको प्रस्तुत हो गया। इस प्रकार वे तीनों भाई साथ साथ वनके लिये चल पड़े।

तीनों राजकुमार चलते चलते अन्तमें हिमालय पर्वत तक जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर बोधिसत्व एक वृक्षके नीचे बैठ गए और सूर्यकुमारसे बोले—"तुम इस सरोवरमें जाकर स्नान करो और पानी पीओ। आते समय मेरे लिये भी पद्मके एक पत्तेमें थोड़ा पानी लेते आना।"

वह सरोवर पहले कुबेरका था। उन्होंने एक राक्षसको वह सरोवर देकर कह दिया था कि जिसे देवधर्मका ज्ञान न हो, वह

यदि इस सरोवरमें उतरे, तो वह तुम्हारा भक्ष्य होगा; तुम उसे खा जाना। पर जो इस सरोवरमें उतरे ही नहीं, उसपर तुम्हारा कोई अधिकार न होगा। तबसे उस राक्षसने यह नियम कर रखा था कि जब कोई उस सरोवरमें उतरता, तो उससे पूछता कि देवधर्म क्या है। यदि वह कोई उत्तर न देता, तो राक्षस उसे खा जाता था। सूर्यकुमार यह बात नहीं जानता था। वह ज्योंही जलमें उतरा, त्योंही राक्षसने उसे पकड़कर पूछा—"देवधर्म किसे कहते हैं?" सूर्यकुमारने कहा—"यह कौन सी बड़ी बात है। लोकमें सूर्य और चन्द्रमाको देवता कहते हैं।" इस पर राक्षस बोला—"बिलकुल झूठ। तुम देवधर्म नहीं जानते।" इतना कहकर वह सूर्यकुमारको खींचता हुआ गहरे जलमें ले गया और वहाँ ले जाकर उसे अपने घरमें बन्द कर दिया।

जब बहुत विलंब हो गया और सूर्यकुमार न लौटा, तब बोधिसत्वने चंद्रकुमारको उसे ढूँढ़ने भेजा। राक्षसने चंद्रकुमारको भी पकड़ लिया और वही प्रश्न किया। चंद्रकुमारने उत्तर दिया—"चारों दिशाएँ देवधर्म से युक्त हैं।" राक्षसने कहा—"बिलकुल झूठ। तुम देवधर्म नहीं जानते।" इतना कह कर वह चन्द्रकुमारको भी खींचता हुआ गहरे जलमें ले गया और उसे भी अपने घरमें बन्द कर दिया।

जब चन्द्रकुमार भी न लौटा, तब बोधिसत्वको आशंका हुई कि कहीं मेरे दोनों भाई किसी भारी विपत्ति में न फँस गए हों। वे उन दोनों को ढूँढने निकले और उनके पैरों के चिह्न देखते हुए उस सरोवर तक पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उनको संदेह हुआ कि इस सरोवरमें कोई राक्षस रहता है। अतः वे तलवार

और तीर-कमान सँभालकर उस राक्षस की प्रतीक्षा करने लगे।

राक्षसने देखा कि बोधिसत्व किनारे ही बैठे हैं, जलमें नहीं उतर रहे हैं। वह साधारण जंगलीका भेस बनाकर उनके पास पहुँचा और बोला—"भाई, तुम बहुत थके हुए जान पड़ते हो। इस सरोवरमें उतरकर मृणाल खाओ और पानी पीओ। जी चाहे तो कमलोंकी माला भी बनाकर पहन लो। इससे तुम्हारी थकावट मिट जायगी और तुम अच्छी तरह आगे जा सकोगे।" बोधिसत्वने समझ लिया कि यह भेस बदले हुए कोई राक्षस है। उन्होंने उससे पूछा—"तुम्हींने न मेरे दोनों भाइयोंको पकड़ लिया है?" राक्षसने कहा—"हाँ।" बोधिसत्व के कारण पूछने पर उसने कहा—"जो देवधर्म नहीं जानता और इस सरोवरमें उतरता है, वह मेरा भक्ष्य होता है।" बोधिसत्वने पूछा—"क्या तुम देवधर्म जानना चाहते हो?" राक्षस ने कहा—"हाँ।" बोधिसत्वने कहा—"मैं तुमको देवधर्म बतला तो सकता हूँ, पर इस समय मैं बहुत थका हुआ हूँ।" यह सुनकर राक्षसने उनको अच्छी तरह स्नान कराके भोजन कराया, कमलोंकी माला पहनाई, शरीरमें सुगन्धित द्रव्य लगाए और उनके सोनेके लिये एक विचित्र मण्डपमें एक बहुत अच्छा पलंग बिछा दिया। बोधिसत्व उस पलंग पर बैठ गए और राक्षस उनके पैरके पास हो बैठा। बोधिसत्वने कहा—"सुनो, मैं तुमको देवधर्म बतलाता हूँ। जो मनुष्य शान्तचित्त, सत्यपरायण हो और निर्मल अन्तःकरणसे धर्म करता हो, जो मनमें कलुषित भाव उत्पन्न होने पर लज्जित होता हो, तुम समझ लेना कि वही देवधर्मा है।"

देवधर्मकी यह व्याख्या सुनकर राक्षस सन्तुष्ट हो गया और बोला—"मैं आपकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आपके दोनों भाइयोंमेंसे एक मैं आपको लौटा देना चाहता हूँ। दोनोंमेंसे जिसे आप कहें, उसे मैं आपके पास ले आऊँ"। बोधिसत्वने कहा—"तुम मेरे छोटे भाईको मेरे पास ले आओ।" राक्षस बोला—"तुम देवधर्म जानते तो अवश्य हो, पर उसके अनुसार कार्य नहीं करते। नहीं तो तुम बड़े भाईको छोड़कर छोटे भाईको न माँगते। भला, तुम्हीं बतलाओ कि तुमने बड़े भाईकी क्या मर्यादा रखी।"

बोधिसत्वने उत्तर दिया—"मैं देवधर्म जानता हूँ और उसीके अनुसार काम करता हूँ। मेरा छोटा भाई मेरी विमाता से उत्पन्न है। उसीके लिये मुझे वनवास मिला है। मेरी विमाता उसीको राजा बनाना चाहती थीं। पर पिता जीने उनकी बात नहीं मानी और मुझसे तथा मेरे सगे छोटे भाईसे वनमें जाकर रहनेके लिये कहा। हम लोगोंको वनकी ओर आते देखकर हमारा यह सबसे छोटा भाई भी आपसे आप वन आनेके लिये तैयार हो गया। और जबसे वह हम लोगोंके साथ आया है, तबसे उसने कभी घर जानेका नाम भी नहीं लिया। अब यदि मैं किसीसे कहूँगा कि उसे राक्षस खा गया, तो कोई मेरी बात पर विश्वास न करेगा। बस इसी लोक-निन्दाके भयसे मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम उसीको छोड़ दो।"

बोधिसत्वकी बात सुनकर राक्षसने उनकी बहुत सराहना की और कहा—"अब मैंने अच्छी तरह समझ लिया कि तुम देव-धर्म जानते हो और उसीके अनुसार काम भी करते हो।"

इतना कहकर वह बोधिसत्वके दोनों भाइयोंको वहाँ ले आया। तब बोधिसत्वने कहा—"भाई, पिछले जन्ममें तुमने जो पाप किए हैं, उन्हींके फल स्वरूप तुम इस जन्ममें राक्षस हुए हो और तुम्हें दूसरे प्राणियों का मांस खाकर जीवन निर्वाह करना पड़ता है। लेकिन इतने पर भी तुमको ज्ञान नहीं होता। तुम इस जन्ममें भी पाप ही करते चले जाते हो। इसके फल-स्वरूप तुम्हें बहुत दिनों तक नीच योनिमें जन्म ग्रहण करके अनेक प्रकारकी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ेंगी। उत्तम तो यही होगा कि तुम अभीसे ये सब नीच कर्म छोड़कर सत्पथका अवलम्बन करो।"

इस प्रकार अपने उपदेशसे उस राक्षसको सत्पथ पर लाकर बोधिसत्व उसी वनमें रहने लगे। राक्षस सब प्रकारसे उनकी देख भाल करने लगा। एक दिन नक्षत्रों आदिकी गणना करके बोधिसत्वने जान लिया कि पिताजीका परलोकवास हो गया। तब वे अपने दोनों भाइयों और उस राक्षसको साथ लेकर वाराणसी आए। वहाँ उन्होंने पिताके राज्यका भार ग्रहण करके चन्द्रकुमारको उपराज या राजप्रतिनिधि और सूर्य्यकुमारको सेनापति बनाया। राक्षसके रहनेके लिये उन्होंने एक बहुत सुन्दर भवन बनवा दिया और उसके निर्वाहके लिये अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदार्थोंकी व्यवस्था कर दी। कुछ दिनों तक भली भाँति राज्य करनेके उपरान्त बोधिसत्व अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए।

काष्ठहारि जातक

एक बार वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्त अपने उद्यानमें विहार करनेके लिये गए थे। वहाँ वे फल फूल आदि एकट्ठा करनेके लिये इधर उधर घूम रहे थे। इतनेमें उन्होंने देखा कि एक स्त्री गीत गा गाकर लकड़ियाँ चुन रही है। ब्रह्मदत्तने उसके रूप पर मुग्ध होकर उसी समय उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। इसके उपरान्त बोधिसत्वने उस स्त्रीके गर्भमें प्रवेश किया। राजाने जब देखा कि वह स्त्री गर्भवती हो गई है, तब उन्होंने अपने नामकी एक अँगूठी उसे देकर कहा—"यदि तुम्हें कन्या हो, तो तुम यह अँगूठी बेचकर उसका पालन पोषण करना; और यदि पुत्र हो, तो तुम इस अँगूठी समेत उसे मेरे पास ले आना।"

यथा समय उस स्त्रीके गर्भसे बोधिसत्व उत्पन्न हुए। जब वे कुछ बड़े होकर महल्लेके बालकोंके साथ खेलनेके योग्य हुए, तब सब बालक उन्हें "निष्पितृक" कह कहकर चिढ़ाने लगे। कोई कहता—"देखो, इस निष्पितृकने मुझे मारा है।" कोई कहता—"देखो, इस निष्पितृकने मुझे ढकेला है।" इस प्रकारकी बातोंसे बोधिसत्वको बहुत दुःख होने लगा। एक दिन उन्होंने अपनी मातासे पूछा—"बताओ मेरे पिता कौन हैं।" माताने उत्तर दिया—"तुम राजाके पुत्र हो।" बोधिसत्वने पूछा—"इसका प्रमाण क्या है?" माताने कहा—"जिस समय वे

राजा मुझे छोड़कर जाने लगे थे, उस समय उन्होंने मुझे यह अँगूठी दी थी। इस पर उनका नाम अंकित है। उन्होंने मुझसे कह दिया था कि यदि कन्या उत्पन्न हो, तो तुम इसे बेचकर उसका पालन पोषण करना; और यदि पुत्र उत्पन्न हो, तो इस अँगूठी समेत तुम उसे मेरे पास ले जाना।" बोधिसत्वने पूछा—"तो फिर तुम मुझे उनके पास ले क्यों नहीं गई?" माताने देखा कि पुत्र अपने पिताको देखने के लिये उत्सुक हो रहा है। अतः वह उसे लेकर राजभवनमें पहुँची और राजाके पास अपने आनेकी सूचना भेजी। जब राजाने उसे अपने पास बुलवाया, तब उसने वहाँ पहुँचकर राजा को प्रणाम किया और कहा—"महाराज, लीजिए यह आपका पुत्र है।"

राजाने मनमें तो सब बातें समझ लीं, पर सभामें लज्जित होना पड़ता, इसलिये वे जान बूझकर भी अनजान बन गए। उन्होंने कहा—"यह कैसी बात है! यह मेरा पुत्र क्यों होने लगा?" स्त्रीने उत्तर दिया—"महाराज, यह देखिए, आपके नामकी अँगूठी है। इसीसे आप इस बालकको भी जान जायँगे।" राजाने अब भी बनावटी आश्चर्य दिखलाते हुए कहा—"यह अँगूठी तो मेरी नहीं है।" विवश होकर स्त्रीने कहा—"इस समय धर्मके अतिरिक्त मेरा और कोई सहायक नहीं है; अतः मैं धर्मकी दोहाई देकर कहती हूँ कि यदि यह बालक आपका ही हो, तो यह अधर में खड़ा रहे; और यदि यह आपका पुत्र न हो तो पृथ्वी पर गिर पड़े।" इतना कहकर उसने बोधिसत्व को दोनों टाँगें पकड़कर ऊपर उठाया और अधरमें छोड़ दिया। बोधिसत्व अधरमें ही वीरासन लगाकर बैठ गए और उन्होंने

बहुत ही मधुर स्वरमें राजासे कहा—"महाराज! सुनिए, मैं आपका ही पुत्र हूँ और आपकी धर्मपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे पालन पोषणका भार अपने ऊपर लें। राजाओंके यहाँ तो सैकड़ों मनुष्योंका पालन पोषण होता है। फिर जो राजाका ही पुत्र हो, उसका पूछना क्या है।"

अधरमें बैठे हुए बोधिसत्वकी यह धर्म-संगत बात सुनकर राजाने दोनों हाथ पसारकर कहाः—"आओ, पुत्र, आओ, आजसे मैं ही तुम्हारा पालन पोषन करूँगा।" राजाकी देखादेखी और भी सैकड़ों आदमी बोधिसत्वको गोदमें लेनेके लिये आगे बढ़े, पर बोधिसत्व राजाके ही हाथोंकी ओर बढ़े और उन्हींकी गोदमें जाकर बैठे। राजाने उनको उपराज और उनकी माताको राजमहिषी बनाया। जब राजाकी मृत्यु हुई, तब बोधिसत्व सिंहासन पर बैठे। उस समय उनका नाम महाराज काष्ठवाहन पड़ा। बहुत दिनों तक धर्मपूर्वक राज्य करनेके उपरान्त वे अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए।

मखादेव जातक

प्राचीन कालमें विदेह राज्यकी मिथिला नगरीमें मखादेव नामक एक धर्मपरायण राजा राज्य करता था। पहले कुमार रहकर, फिर उपराज होकर और अन्तमें महाराज होकर उसने चौरासी हजार वर्ष तक सुखपूर्वक शासन करते हुए अपना समय बिताया था। उसने अपने नापितसे कह रखा था—"जब तुम मेरे सिरमें कोई पका हुआ बाल देखना, तब मुझसे कह देना।" इसके बहुत वर्षोंके उपरान्त एक दिन नापितने राजाके सिरमें एक पका हुआ बाल देखा और राजाको उसकी सूचना दी। राजाने कहा—"वह बाल उखाड़कर मेरे हाथ पर रखो।" नापितने सोने के मोचनेसे वह बाल उखाड़कर राजाके हाथ पर रख दिया।

उस समय भी मखादेवकी आयुके चौरासी हजार वर्ष अवशिष्ट थे, पर फिर भी एक पका हुआ बाल देखकर उसको बहुत चिन्ता हुई। उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानों मृत्यु सामने आकर खड़ी है, अथवा मैं जलती हुई झोंपड़ीमें बंद हूँ। उन्होंने अपने आपसे कहा—"मूर्ख मखादेव, तेरे बाल पक चले और अभी तक तू पापवृत्तिका परिहार न कर सका।" उस पके हुए बालके विषयमें वह जितनी ही चिंता करता था, उसके हृदयको उतना ही अधिक कष्ट होता था। उसका सारा शरीर पसीने पसीने हो गया और उसे अपनी वेष-भूषा भार-स्वरूप जान पड़ने लगी। उसने निश्चय किया कि मैं आज ही संसार त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा।

मखादेवने अपने नापितको एक लाख वार्षिक आयकी

सम्पत्ति दी और अपने बड़े पुत्रको बुलाकर कहा—"पुत्र, अब मेरे बाल पकने लगे और मैं बुड्ढा हो चला। अब तक तो मैंने पूर्ण रूपसे मनुष्य काम्यका भोग किया था, पर अब मैं देव काम्यका भोग करूँगा। मेरा निष्क्रमण–काल आ गया है अतः अब तुम राज्य ग्रहण करो। मैं अब अपने नामके आम्र वनमें जाकर श्रमण वृत्ति ग्रहण करूँगा।"

राजाको प्रव्रज्या ग्रहण करनेके लिये तत्पर देखकर अमात्योंने पूछा—"महाराज, आप क्यों संसारका परित्याग कर रहे हैं ?" राजाने वही पका हुआ बाल हाथमें लेकर कहा—"अब देवदूत मेरी आयुका अन्त करनेके लिये आ गए हैं। मेरे सिरके बाल पकने लग गए हैं। अब मैं व्यर्थ इस मायापाशमें बँधकर नहीं रहना चाहता। अब मैं मुक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ और इसी लिये प्रव्रज्या ग्रहण कर रहा हूँ।"

मखादेव उसी दिन राज्य त्यागकर प्रव्राजक हो गया और अपने नामके आम्र वनमें जाकर रहने लगा। वहाँ चौरासी हजार वर्ष तक तपस्या करनेके उपरान्त उसको पूर्ण ज्ञान हुआ और वह ब्रह्मलोकमें पहुँचा। फिर ब्रह्मलोक छोड़कर उसने मिथिलाके राजाके घर जन्म लिया। वहाँ उसका नाम "निमि" पड़ा। अपने सब सम्बन्धियोंको एकत्र करके उस जन्ममें भी उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और उसी आम्र वनमें कुछ दिनों तक तपस्या करके ब्रह्मविहारका* ध्यान करते करते वह फिर ब्रह्मलोकको चला गया।

---

* बौद्ध शास्त्रोंके अनुसार मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चारोंको ब्रह्म विहार कहते हैं।

सुखविहारि जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक औदीच्य ब्राम्हणके घरमें जन्म लिया था। उन्होंने यह समझकर कि काम सदा दुःखदायी और निष्क्रमण सदा सुखदायी होता है, कामका परिहार किया और वे हिमालयकी ओर चले गए। वहाँ उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और ध्यान आदिके आठों फलों या समापत्तियोंके* अधिकारी हुए। वहाँ पाँच सौ तपस्वी उनके शिष्य भी हो गए।

एक बार वर्षा ऋतुमें बोधिसत्व अपने शिष्योंको लेकर हिमालयसे नीचे उतरे और नगरों तथा जनपदोंमें भिक्षा माँगते हुए वाराणसी पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजाके उद्यानमें अतिथि रूपमें रहकर वर्षाके चार मास बिताए। वर्षा समाप्त हो जाने पर वे विदा लेनेके लिये राजाके पास गए। राजाने उनसे कहा—"आप वृद्ध हुए। अब आप हिमालय जाकर क्या करेंगे। अपने शिष्योंको आश्रममें भेज दीजिए और आप यहीं सुखसे निवास कीजिए। इस प्रकार राजाके अनुरोध करने पर बोधिसत्वने अपने सबसे बड़े शिष्यसे कहा—"इन पाँच सौ शिष्योंकी रक्षा का भार

---

* ध्यान, धारणा आदिके आठ फल या समापत्तियाँ इसप्रकार हैं—चार प्रकारकी ध्यान समापत्ति, आकाशकी अनन्तताका ज्ञान, विज्ञानकी अनन्तताका ज्ञान, अकिंचन्य या शून्यतत्वकी उपलब्धि और नैव संज्ञा ना संज्ञा भाव, अर्थात् वह अवस्था जिसमें यह ज्ञान होता है कि संज्ञा भी नहीं है, असंज्ञा भी नहीं है, और चित्त सदा समाहित होता है।

तुम्हीं पर छोड़ता हूँ। तुम इन लोगोंको लेकर हिमालय चले जाओ। मैं अब यहीं रहूँगा।"

बोधिसत्वका वह बड़ा शिष्य पहले राजा था। उसने राज्यका परित्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण की थी और ध्यान, धारणा आदिके बलसे वह आठों प्रकारके फलों या आपत्तियोंका अधिकारी हुआ था। वह आचार्य की आज्ञासे हिमालय चला गया और वहीं रहने लगा। कुछ दिनों तक वहाँ रहनेके उपरान्त एक दिन आचार्यके दर्शनोंके लिये उसका चित्त बहुत व्याकुल हुआ। उसने तपस्वियोंसे कहा—"तुम लोग यहीं रहो। मैं एक बार जाकर आचार्यके चरण स्पर्श कर आऊँ।" वहाँसे चलकर वह वाराणसी पहुँचा और आचार्यको प्रणाम करके पास ही पड़ी हुई एक चटाई पर सो गया। इतनेमें उनसे भेंट करनेके लिये राजा भी वहाँ आ पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके पास ही बैठ गया। पर राजाके आने पर भी वह तपस्वी उठकर नहीं बैठा, लेटा ही रहा और लेटे लेटे कहता रहा—"आहा, कैसा सुख मिल रहा है! आहा, कैसा सुख मिल रहा है।"

राजाने मनमें सोचा कि तपस्वी मेरी अवज्ञा कर रहा है। उसने कुछ दुःखी होकर बोधिसत्वसे कहा—"प्रभु, जान पड़ता है कि इन तपस्वीने बहुत अधिक भोजन कर लिया है। नहीं तो ये इस प्रकार पड़े पड़े "सुख सुख" न चिल्लाते।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"महाराज, ये तपस्वी भी पहले आपकी ही भाँति राजा थे। पर इस समय इनको जो सुख मिल रहा है, वह राजा रहनेकी दशामें भी इनको कभी न मिला था। प्रव्रज्या ग्रहण कर लेनेके कारण इस समय ये ध्यान-जन्य विमल सुख भोग रहे

और इसी लिये इनके हृदयसे य_ बात निकल रही है। हे राजन! जो पुरुष प्रवर सब कामनाओंसे मुक्त हो जाता है, उसे रत्नकों आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती और वह सदा अपार सुख भोगता रहता है। कामादिसे मुक्त पुरुष ही वास्तवमें सुखी होता है।"

बोधिसत्वमें इस प्रकारका धर्मोपदेश सुनकर राजा सन्तुष्ट हो गया और उन दोनोंको प्रणाम करके वहाँसे चला गया। तपस्वी भी आचार्यसे विदा होकर हिमालय चला गया। बोधिसत्व वहीं वाराणसीमें रह गए और कुछ दिनोंके उपरान्त शरीर त्यागकर ब्रह्मलोकको चले गए।

मृतकभक्त* जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें एक प्रसिद्ध त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण अध्यापक रहता था। एक दिन उसने मृतकभक्त देनेके लिये एक बकरा लाकर अपने शिष्योंको दिया और कहा—"इसे ले जाकर नदीमें स्नान करा लाओ, इसके गलेमें माला पहनाकर, इसके शरीर पर पाँचों उँगलियोंसे छाप लगाकर और अच्छी तरह सजाकर मेरे पास ले आओ।" गुरुके आज्ञानुसार शिष्य लोग उस बकरेको नदी किनारे ले गए और वहाँ उसे स्नान कराकर और अच्छी तरह सजाकर खड़ा कर दिया। उस समय उस बकरेको अपने पूर्व जन्मोंकी सब बातों-का स्मरण हो आया और वह यह सोचकर हँस पड़ा कि आज ही मेरे सब दुःखोंका अन्त हो जायगा। पर थोड़ी ही देरमें वह फिर यह सोचकर रोने लगा कि मेरी हत्या करके अब यह ब्राह्मण भी वही दुःख भोगेगा, जो आज तक मैंने भोगे हैं। उसे इस प्रकार पहले हँसते और फिर रोते देखकर शिष्योंने पूछा—"तेरे इस प्रकार हँसने और फिर रोनेका क्या कारण है?" बकरेने उत्तर दिया—"तुम लोग पहले मुझे अपने गुरुके पास ले चलो; और तब वहीं उनके सामने मुझसे यह प्रश्न करना।"

---

* मृत व्यक्तिओंकी प्रेतात्माओंको तृप्त करनेके उद्देश्यसे जो अन्न आदि उत्सर्ग किया जाता है, उसे मृतकभक्त कहते हैं।

शिष्य लोग उस बकरेको लेकर गुरुके पास आए और नदी किनारे जो कुछ हुआ था, वह उन्होंने गुरुसे कह सुनाया। इसपर उस ब्राह्मणने स्वयं ही उस बकरेसे उसके हँसने और रोनेका कारण पूछा। बकरेको उस समय अपने पूर्व जन्मकी सब बातोंका स्मरण था। उसने कहा—"हे ब्राह्मण, पूर्व जन्ममें मैं भी तुम्हारे ही समान त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण था। एक बार मैंने भी इसी प्रकार एक बकरेका बध करके मृतकभक्त दिया था। उसी पापके फल स्वरूप मुझे चार सौ निन्न्यानवे बार बकरेका जन्म लेना पड़ा और हर बार अपना सिर कटाना पड़ा। यह मेरा पाँच सौवाँ और अन्तिम जन्म है। मैं यह सोचकर प्रसन्न हुआ और हँसा था कि अब इस दुःखसे सदाके लिये मेरा छुटकारा हो जायगा। पर फिर मैंने सोचा कि मैं तो इस प्रकार पाँच सौ बार सिर कटा कटाकर सदाके लिये कष्टसे मुक्त हो रहा हूँ। पर आपको मेरी हत्या करनेके कारण ठीक इसी प्रकार पाँच सौ बार अपना सिर कटाना पड़ेगा। इसी लिये मुझे आप पर दया आई और मैं रोने लगा।"

बकरेकी यह बात सुनकर ब्राह्मणने कहा—"अच्छा, तुम मत डरो; मैं तुम्हारी हत्या नहीं करूँगा।" बकरा बोला—"आप चाहे मुझे मारें और चाहे न मारें, पर आज मेरी जान नहीं बचेगी। ब्राह्मणने कहा—"नहीं, तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो।" मैं तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारी रक्षा करूँगा।" बकरा बोला—"महाराज, आपकी रक्षा मेरे किसी काम न आवेगी; क्योंकि मैंने जो पाप किया है, वह प्रबल है और आपकी शक्ति उसके सामने निर्बल है।"

इस प्रकार बातें होने पर ब्राह्मणने उस बकरे को खोल दिया और अपने शिष्योंको साथ लेकर यह कहता हुआ उस बकरेके पीछे हो लिया कि देखूँ, आज कौन इसकी हत्या करता है। बकरा खुलते ही एक बड़े पत्थर पर चढ़कर सिर उठाकर पत्तियाँ आदि खाने लगा। ठीक उसी समय वहाँ बिजली गिरी जिससे उसका सिर धड़से अलग हो गया।

यह विलक्षण घटना देखकर वहाँ बहुत से लोग एकत्र हो गए। उस समय बोधिसत्व वहाँ वृक्ष-देवताके रूपमें रहा करते थे। दैव शक्तिके प्रभावसे वे आकाशमें वीरासन लगाकर बैठ गए। सब लोग चकित होकर उनकी ओर देखने लगे। बोधिसत्व अपने मनमें सोचने लगे कि यदि अभागे मनुष्य इस दुष्कर्म का परिणाम जानते होते, तो वे कभी प्राणिहिंसा न करते। उन्होंने उपस्थित लोगोंको मधुर स्वरमें उपदेश दिया—"यदि जीव यह जानता होता कि हिंसाके कारण जन्म जन्मांतरमें कितना कठोर दण्ड भोगना पड़ता है, तो वह कभी किसी जीव की हिंसा न करता।" बोधिसत्वके इस प्रकारके उपदेशोंसे सब लोगोंने सदाके लिये जीवकी हिंसा करना छोड़ दिया। बोधिसत्व अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए। वे सब लोग जब तक जीवित रहे, तब तक दान, धर्म आदि सत्कार्य करते रहे और मरने पर ब्रह्मलोकमें गए।

नन्दिविलास जातक

प्राचीन कालमें तक्षशिलामें गान्धार लोग राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्वने बछड़ेका जन्म धारण किया था। जिस समय वे बछड़े थे, उसी समय एक ब्राह्मणने किसी दातासे उन्हें प्राप्त किया था। ब्राह्मणने उनका नाम नन्दिविलास रखा था। वह उन्हें अच्छे अच्छे पदार्थ और अन्न आदि भोजनके लिये दिया करता था और पुत्रकी भाँति उनका पालन पोषण किया करता था। बड़े होने पर बोधिसत्व सोचने लगे कि इस ब्राह्मणने बड़े कष्टसे मुझे पाला है। सारे जम्बू द्वीपमें ऐसा कोई बैल नहीं है जो मेरे जितना बोझ खींच सकता हो। इसलिये अपने बलका परिचय देकर ही इसके लालन पालन का बदला चुकाना चाहिए। एक दिन उन्होंने ब्राह्मणसे कहा—"महाराज, आप किसी ऐसे महाजनके पास जायँ जिसके पास बहुत से बैल आदि हों और उससे यह कहकर एक हजार रुपएका पण लगावें कि मेरा बैल एक सौ लदी हुई गाड़ियाँ खींच सकता है।"

तदनुसार ब्राह्मणने एक महाजनके पास जाकर यह प्रसंग छेड़ा कि नगरमें किसका बैल सबसे अधिक बोझ खींच सकता है। महाजनने कहा—"अमुकका बैल जितना बोझ खींचता है, उतना और किसीका बैल नहीं खींच सकता।" ब्राह्मणने कहा—"एक बैल मेरे पास है जो एक साथ ही सौ लदी हुई गाड़ियाँ खींच सकता है।" महाजनने हँसते हुए कहा—"भला ऐसा भी बैल कहीं होता है!" ब्राह्मणने कहा—"मेरे ही

पास है ।" महाजन बोला—"अच्छा तो फिर पण लगा लो ।" ब्राह्मणने एक हजार रुपएका पण लगाया । एक सौ गाड़ियों पर कंकड़ पत्थर आदि लदवा दिए गए और उन गाड़ि-योंको एक पंक्तिमें खड़ा करके एक साथ बाँध दिया गया । तब उसने नन्दिविलासको स्नान कराके, माला पहनाकर और उँग-लियोंसे गंध आदिके छाप लगाकर सबसे आगेकी गाड़ीमें जोत दिया और आप गाड़ी पर बैठकर चाबुक हिलाता हुआ कहने लगा—"चल रे दुष्ट ! जल्दी चल रे दुष्ट !"

बोधिसत्वने सोचा कि मैंने तो आज तक कभी कोई दुष्टता नहीं की, फिर भी यह आज मुझे "दुष्ट, दुष्ट" कह रहा है । इस-लिये वे अपने चारों पैरोंको खंभेकी तरह अड़ाकर खड़े हो गए और एक पग भी आगे न बढ़े ।

महाजनने तुरंत उस ब्राह्मणसे पणके एक हजार रुपए ले लिए । हजार रुपए दण्ड देकर ब्राह्मण नन्दिविलासको खोलकर घर ले आया और बहुत उदास होकर चुपचाप सो रहा । बैल-रूपी बोधिसत्व जब बाहरसे चरकर सन्ध्या समय घर आए, तब उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अभी तक उदास पड़ा हुआ है । बोधि-सत्वने पूछा—"क्या आप सोने जा रहे हैं ?" ब्राह्मणने कहा—"जिसके एक हजार रुपए इस प्रकार व्यर्थ पानी में मिल जायँ, उसे भला नींद आ सकती है !" बोधिसत्वने कहा—"महाराज, मैं बहुत दिनों तक आपके पास रहा हूँ । इस बीचमें क्या मैंने आज तक आपकी कभी कोई हानि की है ? न तो आज तक मैंने कभी किसीको मारा, न आपका एक बरतन तक तोड़ा, न अपने निश्चित स्थानको छोड़कर और किसी स्थान पर मल मूत्रका

त्याग किया।" ब्राह्मणने कहा—"नहीं, आज तक तुमने मेरा कोई अनिष्ट नहीं किया।" बोधिसत्वने पूछा—"तो फिर आज आपने मुझे दुष्ट क्यों कहा ? अतः आज आपकी जो हानि हुई है, वह आपके ही दोषके कारण हुई है, मेरे कारण नहीं। अब आप फिर उसी महाजनके पास जायँ और इस बार दो हजार रुपयोंकी बाजी लगावें। पर एक बातका ध्यान रखिएगा। आजसे मुझे कभी दुष्ट न कहिएगा।" बोधिसत्वकी यह बात सुनकर ब्राह्मण फिर उसी महाजनके पास गया और उससे दो हजार रुपएकी शर्त लगाई। फिर पहलेकी ही भाँति गाड़ियाँ लाद कर एक पंक्तिमें बाँधी गई और नन्दिविलासको खूब सजा-कर आगे की गाड़ीमें जोत दिया गया। ब्राह्मणने नन्दिवि-लासकी पीठ पर हाथ फेरते हुए और उसे प्रेमपूर्वक चुमकारते हुए कहा—"हाँ भइया, जरा खींचो तो।" ब्राह्मणके मधुर वाक्य सुनते ही बोधिसत्व उन गाड़ियोंको खींचते हुए चल पड़े। पहले जिस स्थान पर पहली गाड़ी थी, क्षण भरमें उसी स्थान पर अंतिम गाड़ी आ पहुँची। महाजन पणमें हार गया और उसने ब्राह्मणको तुरंत दो हजार रुपए दे दिए। जिन लोगोंने यह व्या-पार देखा था, उन्होंने भी बहुत प्रसन्न होकर नन्दिविलासको बहुत कुछ दिया। वह सब धन भी ब्राह्मणको ही मिला। इस प्रकार बोधिसत्वकी कृपासे ब्राह्मणको बहुत सा धन मिल गया।

मुणिक जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक बैल का जन्म धारण किया था। उस समय वे एक भूस्वामी या जमींदारके घरमें रहा करते थे। उनका नाम था महालोहित। उनके साथ उनका छोटा भाई भी रहता था जिसका नाम चुल्ललोहित था।

उस जमींदारकी एक कुमारी कन्या थी। नगरके एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने उसके साथ अपने पुत्रका विवाह करना निश्चित किया था। कन्याकी माता सोचती थी कि विवाहके समय बरातियों और घरातियों आदिको भोजन आदिका कष्ट न हो; इसलिये वह मुणिक नामक एक सूअरको खूब खिला पिलाकर पुष्ट कर रही थी। यह देखकर चुल्ललोहितने अपने बड़े भाई महालोहितसे कहा—"देखो भइया, हम दोनों दिन रात इस जमींदारका बोझ ढोते ढोते मरे जाते हैं। इतने पर भी हम लोगोंको साधारण घास और भूसा आदि ही खानेको मिलता है। और इस सूअरको, जो कुछ भी काम नहीं करता, भात और अच्छा अच्छा भोजन मिलता है।" बोधिसत्वने कहा—"भाई, इस सूअरको अच्छे अच्छे पदार्थ खाते देखकर ईर्ष्या न करो; क्योंकि ये सब पदार्थ यह मरनेके लिये खा रहा है। हमारे स्वामीकी कन्याके विवाहके समय जो लोग आवेंगे, उन्हें इसीका मांस खिलाया जायगा। इसी लिये यह इतने यत्नसे पाला जा रहा है। और दो चार दिन ठहरो, फिर देख लेना। जब निमंत्रित लोग आने लगेंगे, तब हमारे

स्वामीके सेवक इसके हाथ पैर पकड़कर इसे घसीटते हुए मंच पर ले जायँगे और वहाँ इसके अंग प्रत्यंग काटकर इसके मांससे अनेक प्रकारके सूप और व्यंजन बनावेंगे। अतः इस मुणिकका यह क्षणिक सुख देखकर ईर्ष्या मत करो; और तुम्हें जो कुछ भूसा आदि मिलता है, वही खाकर संतुष्ट रहो।"

इसके थोड़े ही दिनों बाद सब निमंत्रित आकर एकत्र हुए। कन्या-पक्षके लोगोंने मुणिकको मारकर उसके मांससे अनेक प्रकारके सूप और व्यंजन बनाए। उस समय बोधिसत्वने चुल्ल-लोहितसे कहा—"तुमने मुणिककी दशा देखी? उसे जो अच्छा और अधिक भोजन मिलता था, उसका परिणाम देख लिया? हम लोगोंको केवल घास और भूसा आदि ही मिलता है, पर वह मुणिकके भोजनसे सैकड़ों हजारों गुना अच्छा है। इससे हम लोगोंकी कोई हानि नहीं होती, बल्कि आयु बढ़ती है।"

कुलायक जातक

बहुत दिनोंकी बात है, मगधके राजा लोग राजगृह नगरमें रहा करते थे। उस समय बोधिसत्वने मगधके मचल नामक ग्राममें उच्च कुलके एक ब्राह्मणके घरमें जन्म लिया था। नामकरणके समय उनका नाम मघकुमार रखा गया था। पर जब वे बड़े हुए, तब लोग उन्हें मघमाणवक * नामसे पुकारने लगे। उनके माता-पिताने अच्छे कुलकी एक कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया था। अब बोधिसत्वको बाल बच्चे हो गए और वे दान-पुण्य आदि सत्कार्य करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

मचल ग्राममें केवल तीस घर थे। एक दिन गाँवके सब लोग किसी कामके लिये एक स्थान पर एकत्र हुए। बोधिसत्व जहाँ खड़े थे, वहाँकी धूल उन्होंने पैरसे हटा दी और वह स्थान स्वच्छ कर लिया। इतनेमें एक और आदमी वहाँ आ खड़ा हुआ। बोधिसत्वने वह स्थान उसके लिये छोड़ दिया और आप कुछ दूर हटकर एक और स्थान साफ कर लिया। इतनेमें एक और आदमी फिर उस स्थान पर आ खड़ा हुआ। इस प्रकार उन्होंने धीरे धीरे सभी उपस्थित लोगोंके लिये स्थान साफ कर दिया था।

और एक बारकी बात है, बोधिसत्वने लोगोंके सुभीतेके लिये पहले एक मण्डप बनवाया था और फिर उसे तोड़कर

---

* मावणक = लड़का, छोकरा।

उसके स्थान पर एक धर्मशाला बनवाई थी। वहाँ लोगोंके बैठने के लिये आसन और पीनेके लिये जलके पात्र रखे रहते थे। बोधिसत्वके प्रयत्नसे उस ग्रामके सभी निवासी उन्हींके समान परोपकारी और धर्मात्मा हो गए थे। वे भी पंचशील-सम्पन्न होकर बोधिसत्वके साथ मिलकर अनेक प्रकारके सत्कार्य किया करते थे। वे प्रभातके समय शय्या छोड़कर उठ बैठते थे: कुल्हाड़ी और मुद्गर आदि हाथमें लेकर घरसे निकल पड़ते थे; रास्तेमें पड़े हुए ईंट-पत्थर आदि हटाकर उसे साफ कर देते थे; यदि कोई ऐसा पेड़ होता था जिसकी डालियोंमें गाड़ियोंके पहिए आदि अटकते थे, तो उन डालियों या पेड़ों आदिको काट देते थे; ऊबड़ खाबड़ जमीनको साफ और सम कर देते थे; नालों आदि पर पुल बाँध देते थे; छोटे छोटे तालाब आदि खोदा करते थे; धर्मशालाएँ बनाते थे; दान-पुण्य आदि शुभ कर्म करते थे और बोधिसत्वके उपदेशके अनुसार शील व्रतका पालन करते थे।

एक दिन मचल ग्रामका प्रधान अधिकारी सोचने लगा—"यदि ये सब लोग मद्य आदि पीकर आपसमें मारपीट किया करते, तो मद्यके कर तथा लोगोंके अर्थ-दण्डसे मुझे अच्छी आय हो जाया करती। पर यह मघ माणवक इन लोगोंको शील व्रत की शिक्षा देता है जिससे नर-हत्या आदि अपराध यहाँसे बिलकुल उठ ही गए हैं।" यह सोचते सोचते उसे क्रोध आ गया और उसने बिगड़कर मन ही मन कहा—"अच्छा, मैं इन लोगों को शीलव्रतका मजा चखाता हूँ।"

इसके उपरान्त गाँवके उस प्रधानने राजाके पास जाकर कहा—"महाराज, गाँवमें डाकुओंका एक दल आया है जो

लूट पाट और उपद्रव करता फिरता है।" राजाने कहा—"उन लोगोंको पकड़ लाओ।" इसपर वह बोधिसत्व और उनके अनुयायियोंको पकड़कर राजाके पास ले गया। राजाने बिना कुछ पूछे या समझे ही आज्ञा दे दी कि इन लोगोंको हाथीके पैरों तले कुचलवा दो।

राजाके सेवक लोग बोधिसत्व और उनके साथियोंको पकड़कर राजप्रासाद के आँगनमें ले गए और हाथ पैर बाँधकर उन्हें जमीन पर रख दिया। हाथी लानेके लिये आदमी भेजा गया। उस समय बोधिसत्वने अपने साथियोंसे कहा—"भाइयो, शीलव्रत कभी न छोड़ना। सदा इस बातका ध्यान रखना कि यह चुगली खानेवाला अधिकारी, दण्ड देनेवाला राजा और हम लोगोंको कुचलनेवाला हाथी सभी हमारे लिये समान रूप से प्रेमपात्र हैं।"

इतनेमें हाथी भी वहाँ आ गया। पर महावत बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी हाथीको उन लोगों पर न ले जा सका। उन लोगोंको देखते ही हाथी चिल्लाकर पीछे भागा। तब कई दूसरे हाथी लाए गए। वे सब भी उसी प्रकार चिल्लाकर पीछे हट गए। राजाने सोचा कि इन लोगों के पास कोई ऐसा औषध है जिसकी गंधके कारण हाथी इन लोगोंके पास नहीं जाते। पर सबकी तलाशी लेने पर भी किसीके पास कोई औषध आदि न निकला। तब राजाने सोचा कि कदाचित् ये लोग कोई मन्त्र जानते हैं। उसने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि इन लोगोंसे पूछो कि इनमेंसे कोई मन्त्र आदि भी जानता है या नहीं। राजाके सेवकोंके पूछने पर बोधिसत्वने उत्तर दिया—"हाँ, हम लोग

मन्त्र अवश्य जानते हैं।" जब सेवकोंने यह बात राजासे कही, तब राजाने उन लोगोंको अपने पास बुलवाकर कहा—"अच्छा, बतलाओ वह कौन सा मन्त्र है।"

बोधिसत्वने कहा—"महाराज, हम लोग कभी किसी प्राणी की हत्या नहीं करते; जबतक हमें कोई द्रव्य नहीं देता, तबतक हम उसे ग्रहण नहीं करते; कभी कुमार्गमें नहीं चलते; झूठ नहीं बोलते और न मद्य पान करते हैं; हम सबके साथ दया और मित्रताका व्यवहार करते हैं; ऊबड़ खाबड़ मार्गोंको सम करते हैं, तालाब आदि खोदते हैं और धर्मशालाएँ बनाते हैं। यही हम लोगोंका मन्त्र है, यही कवच है और यही बल है।"

बोधिसत्वकी यह बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उस चुगली खानेवाले प्रधानकी सारी सम्पत्ति छीनकर बोधिसत्व और उनके साथियोंमें बाँट दी और उस प्रधानको इन लोगोंकी सेवामें रख दिया। इन लोगोंको कुचलनेके लिये पहले जो हाथी लाया गया था, वह हाथी, और जिस गाँवमें ये लोग रहते थे, वह गाँव भी राजाकी आज्ञासे इन लोगोंको मिल गया। अब ये सब लोग और भी अच्छी तरहसे अनेक प्रकारके शुभ कर्म करने लगे। राज. मजदूर आदि बुलाकर एक चौराहे पर ये लोग एक बड़ी धर्मशाला बनवाने लगे। पर स्त्रियों से ये लोग कुछ विरक्त रहते थे, इसलिये इस पुण्यकार्यमें इन लोगोंने ग्रामकी स्त्रियोंको अपने साथ सम्मिलित नहीं किया था।

बोधिसत्वके घरमें चार स्त्रियाँ थीं। उनमेंसे एक का नाम था सुधर्मा, दूसरीका चित्रा, तीसरीका नन्दा और चौथीका सुजाता। एक दिन सुधर्माने एक राजको एकान्तमें पाकर उसे

कुछ धन दिया और कहा—"भाई, तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे इस धर्मशाला बनवानेके काममें मैं सबसे अधिक पुण्य की भागिनी हो जाऊँ।"

राजने उत्तर दिया—"यह कोई बड़ी बात नहीं है। तुम इसके लिये कोई चिन्ता न करो।" इसके उपरान्त वह राज एक अच्छी लकड़ी ले आया। जब वह लकड़ी भली भाँति सूख गई, तब उसे छील और रँदकर उसने एक सुन्दर शिखर बनाया और एक कपड़ेमें लपेटकर वह शिखर सुधर्माके घरमे रख दिया। जब धर्मशाला बनकर तैयार हो गई और शिखर बैठानेका समय आया, तब उस राजने कहा—"एक काम तो रह ही गया।" लोगोंने पूछा—"वह क्या?" उसने उत्तर दिया—"इसमें शिखर तो है ही नहीं। बिना शिखरके धर्मशाला किस कामकी।" लोगोंने कहा—"तो फिर एक शिखर भी गढ़ डालो।" राजने कहा—"कच्ची लकड़ीका तो शिखर बन ही नहीं सकता। उसके लिये तो पहलेसे ही लकड़ीकी व्यवस्था कर रखनी चाहिए थी।" लोगोंने पूछा—"तो फिर अब क्या होगा?" राजने कहा—"पता लगाओ, यदि किसीके घरमें बना बनाया शिखर मिल जाय, तो वही लेकर काम चलाओ।"

अब सब लोग शिखर ढूँढने निकले। ढूँढते ढूँढते सुधर्माके घरमें शिखर निकल आया। पर सुधर्मा वह शिखर बेचनेके लिये किसी प्रकार राजी ही नहीं होती थी। वह कहती थी—"यदि तुम लोग मुझे भी इसके पुण्यकी भागिनी बनाओ, तो मैं बिना मूल्य लिए ही यह शिखर दे सकती हूँ। लोगोंने

कहा—"यह तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। हम लोग स्त्रियोंको पुण्यका भाग देते ही नहीं।" इस पर उस राजने कहा—"भला आप लोग यह कैसी बात कहते हैं! इस ब्रह्माण्डमें एक ब्रह्मलोकको छोड़कर और भी कोई ऐसा स्थान है जहाँ स्त्रियाँ न हों? आप लोग यह शिखर लेकर अपना काम चलाइए।" अन्तमें विवश होकर उन लोगोंने वह शिखर ले लिया और धर्मशाला बनकर तैयार हो गई। उसमें बैठनेके लिये फलकासन और पीनेके लिये जलसे भरे हुए पात्र आदि रखे गए और ऐसी व्यवस्था कर दी गई जिसमें पथिकोंको सदा अन्न आदि मिला करे। धर्मशालाके चारों ओर एक प्राचीर बना और उसमें एक ओर एक द्वार रखा गया। प्राचीरके अन्दरकी सारी भूमिमें बालू बिछा दिया गया और उसके बाहर तालके वृक्ष लगा दिए गए। चित्राने वहाँ एक उद्यान बनवा दिया जिसमें अनेक प्रकारके पुष्पों और फलोंके वृक्ष लग गए। नन्दाने भी वहाँ एक जलाशय खुदवा दिया। उसमें पाँचों वर्णोंके पद्म लग गए जिनसे उसकी शोभा और भी बढ़ गई। एक सुजाता ही ऐसी बच गई जिसने वहाँ कुछ भी न बनाया था।

अब बोधिसत्त्व सप्तविध व्रतका पालन करने लग गए। वे माता-पिताकी सेवा करते, बड़े-बूढ़ोंका आदर सत्कार करते, सदा सत्य बोलते, कभी किसीको कोई कठोर वचन न कहते, किसीके साथ व्यर्थ वाद विवाद न करते और न किसीसे ईर्ष्या द्वेष रखते थे। इस प्रकार सबके प्रशंसा-भाजन बनकर बोधिसत्वने यथासमय प्राण त्याग दिए और त्रिदशालय में जन्म ग्रहण करके

इंद्रत्व प्राप्त किया। उनके साथियों तथा अनुयायियोंने भी इहलोक का परित्याग करके देव जन्म धारण किया।

उस समय त्रिदशालयमें असुर लोग निवास किया करते थे। एक दिन देवराज इंद्रने सोचा कि जिस राज्यमें अपना अनन्य और एकान्त शासन न हो, वह ठीक नहीं। उन्होंने असुरोंको देवसुरा पिलाई और जब वे मत्त हो गए, तब उनमेंसे एक एकका पैर पकड़कर सुमेरु पर्वतके नीचे फेंक दिया। वहाँ पहुँचकर असुरोंने सोचा कि वृद्ध इंद्रने हम लोगोंको मत्त करके रसातलमें फेंक दिया है और आप समस्त देवलोकका अधिकारी बन गया है। चलो, हम लोग उसके साथ युद्ध करें और फिरसे देवनगर पर अपना अधिकार जमावें। अब. जिस प्रकार च्यूँटियाँ खम्भे पर चढ़ती हैं, उसी प्रकार. असुर लोग सुमेरु पर्वत पर चढ़ने लगे।

जब इंद्रने सुना कि असुर लोग देवनगर पर आक्रमण करनेके लिये आ रहे हैं, तब उन्होंने आगे बढ़कर रसातलमें ही युद्ध किया। पर युद्धमें वे पराजित होकर पीछे भागे। देवताओंका डेढ़ सौ योजन लंबा वैजयन्त रथ दक्षिण समुद्र परसे होता हुआ चलने लगा। उसपर चलते चलते देवताओंको शाल्मलि वन मिला। रथके धक्केसे शाल्मलिके वृक्ष उखड़ उखड़कर समुद्रमें गिरने लगे और उन वृक्षों परके पक्षियोंके बच्चे समुद्रमें गिरकर चिल्लाने लगे। उनकी चिल्लाहट सुनकर इंद्रने अपने सारथी मातलिसे पूछा—"क्यों भाई, यह करुण स्वर किसका है?" मातलिने उत्तर दिया—"देवराज, आपके रथके वेगसे शाल्मलिके वृक्ष टूटकर गिर रहे हैं। इसी लिये

वनपरके पक्षियोंके बच्चे प्राणके भयसे चिल्ला रहे हैं।" इंद्रने यह सुनकर कहा—"ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये इतने प्राणियोंको इस प्रकार कष्ट देना उचित नहीं। ऐश्वर्यके लोभमें पड़कर हमें जीव-हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसकी अपेक्षा यदि असुर लोग हमको मार ही डालें तो भी अच्छा है। अब तुम यहाँसे रथ लौटाओ।"

सारथी ने रथ घुमाकर दूसरे मार्गसे देवनगरकी ओर चलना आरम्भ किया। असुरोंने जब रथको घूमते हुए देखा, तब मनमें सोचा कि और और ब्रह्माण्डोंसे भी इंद्र लोग इनकी सहायता करनेके लिये आ रहे हैं। इसी लिये इन्होंने अपना रथ लौटाया है। यह सोचते ही वे लोग भागे और असुर लोकमें जाकर शरण ली। इंद्रने भी देवनगरमें प्रवेश किया। वहाँ देवलोक तथा ब्रह्मलोकके निवासी उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गए। उस समय पृथ्वीमेंसे हजार योजन ऊँचा एक प्रासाद निकला। वह प्रासाद विजयके समय निकला था, इसलिये उसका नाम रखा गया—"वैजयन्त।" इसके उपरान्त इंद्रने असुरोंका आक्रमण रोकनेके लिये सुमेरु पर्वत पर पाँच स्थानोंमें अपनी सेनाएँ रक्खीं।

अब इंद्र बड़े आनन्दसे सब प्रकारके सुख और सम्पत्तिका भोग करने लगे। उस समय सुधर्माने भी मानव शरीर त्यागकर दूसरा जन्म धारण किया। इस दूसरे जन्ममें वह इंद्रकी पादचारिका हुई। उसने धर्मशालाके लिये शिखर दान करके जो पुण्य संचित किया था, उसके बलसे उसके रहनेके लिये पृथ्वीमेंसे सुधर्मा नामक पाँच सौ योजन ऊँचा एक

दिव्य और अपूर्व प्रासाद निकला। वहाँ इन्द्र सोनेके पलंग पर दिव्य छत्रके नीचे बैठकर देवलोक और नरलोकका शासन करने लगे।

कुछ दिनोंमें चित्रा भी इहलोक त्यागकर दूसरे जन्ममें इंद्रकी पादचारिका बनी। पहले जन्ममें उसने उद्यान उत्सर्ग किया थ, अतः उसके लिये चित्रलता वन नामका एक बहुत सुन्दर और रमणीय उद्यान पृथ्वीमेंसे निकल आया। सबके अन्तमें नन्दा भी मरनेके उपरान्त इन्द्रकी पादचारिका हुई। उसने सरोवर बनवाया था, अतः उसके लिये नन्दा नामक एक मनोहर सरोवर भी वहाँ बन गया। पर सुजाताने कोई सत्कार्य नहीं किया था, इसलिये मृत्युके उपरान्त वह बकका जन्म धारण करके किसी वनकी कन्दरामें रहने लगी। एक दिन इंद्र सोचने लगे कि वह सुजाता कहाँ गई और उसने कौन सा जन्म धारण किया, जरा इसका भी पता लगाना चाहिए। ढूँढते ढूँढते बकके रूपमें सुजाता मिल गई और वे उसे अपने साथ देवलोकमें ले आए और उसे देवपुरीकी सारी शोभा, सुधर्मा सभा, चित्रलता वन, नन्दा सरोवर आदि दिखाकर कहने लगे—"देखो, सुधर्मा, चित्रा और नन्दाने जो शुभ कर्म किए थे, उनके फल स्वरूप वे मेरी पादचारिकाएँ हुई हैं। पर तुमने कोई ऐसा शुभ कर्म नहीं किया, इसलिये तुम्हें तिर्यग्जन्म धारण करना पड़ा। अब तुम फिरसे भूलोकमें जाकर शीलव्रतका पालन करो।" इतना कहकर वे सुजाताको ले जाकर फिर उसी जंगलमें रख आए।

तबसे सुजाता शीलव्रतका पालन करने लगी। कुछ दिनोंके

उपरान्त उसकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्र एक मछलीका रूप धारण करके उसके सामने पहुँचे। सुजाताने मछलीको मृत समझकर उसे मुँह पकड़कर उठाया, जिस पर मछलीने दुम हिलाई। तब सुजाताने उसे जीवित समझकर छोड़ दिया। इन्द्र भी यह कहकर अन्तर्धान हो गए कि धन्य सुजाता, तू शीलव्रतका पालन कर सकेगी।

बक-जन्मके उपरान्त सुजाताने दूसरे जन्ममें वाराणसीके एक कुम्भकारके घरमें जन्म लिया। अब फिर इन्द्रको उसका स्मरण हुआ। वे एक बुड्ढे गाड़ीवानका रूप धरकर और एक बैल गाड़ी पर सोनेके बहुतसे खरगोश रखकर वाराणसी पहुँचे और "खरगोश लो, खरगोश" चिल्लाते हुए उस कुम्हारके मकानके पास पहुँचे। कुछ लोग खरगोश लेनेके लिये उनके पास आ पहुँचे। पर उन्होंने कहा—"ये खरगोश हर किसीको नहीं मिलते। जो शीलव्रतका पालन करता है, वही ये खरगोश पा सकता है।" उन लोगोंने कहा—"हम लोग तुम्हारा शीलव्रत नहीं जानते। हम तो मूल्य देंगे और खरगोश लेंगे।" इन्द्रने उत्तर दिया—"मैं मूल्य लेकर खरगोश नहीं देता। जो शीलव्रतका पालन करता है, उसे मैं बिना मूल्य लिये ही देता हूँ।" इसपर सब लोग इन्द्रको भली बुरी बातें कहते हुए चले गए। जब यह बात सुजाताने सुनी, तब उसने मनमें सोचा कि सम्भव है, ये खरगोश मेरे ही लिये आए हों। उसने गाड़ीवानके पास पहुँचकर कुछ खरगोश माँगे। गाड़ीवानने पूछा—"तुम शीलव्रतका पालन करती हो?" सुजाताने उत्तर दिया—"हाँ, करती हूँ।" गाड़ीवानने कहा—"तो

फिर ये खरगोश मैं तुम्हारे ही लिये लाया हूँ।" इतना कहकर इन्द्रने सब खरगोश उसके द्वार पर रख दिए और आप वहाँसे चल पड़े।

इतनी अधिक सम्पत्ति पाकर सुजाताने बहुत दिनों तक शील-व्रतका पालन किया और मरने पर असुरोंके राजा विप्रचित्तके घर उसकी कन्याके रूपमें जन्म लिया। पूर्व जन्मके सत्कार्योंके कारण इस जन्ममें वह बहुत सुन्दरी हुई। जब वह सयानी हुई, तब उसने अपने पितासे अपने स्वयंवरका आयोजन करनेके लिये कहा। इन्द्रने पहले ही पता लगा लिया था कि सुजाताने विप्रचित्तके घर जन्म लिया है। वे असुरका रूप धारण करके स्वयंवर सभामें पहुँचे। उन्होंने समझ लिया था कि सुजाता मुझे ही वरमाल पहनावेगी।

समय होने पर सुजाता सभामें लाई गई। उसके बड़ोंने कहा—"बेटी, अपने इच्छानुसार पति वरण कर लो।" सुजाताने चारों ओर देखा और इन्द्रको पहचानकर प्रेमपूर्वक उन्हींको वरण किया। इन्द्र उसे लेकर देवलोकको चले गए और वहाँ उन्होंने उसे ढाई करोड़ नर्त्तकियोंकी अधिनेत्री बनाया। इसके उपरान्त आयु पूर्ण होने पर इन्द्रने अपने कर्मानुसार फल भोगनेके लिये दूसरा जन्म धारण किया।

तित्तिर जातक

प्राचीन कालमें हिमालय पर्वत पर न्यग्रोधका एक बहुत बड़ा वृक्ष था, जिसके पास एक तीतर, एक बन्दर और एक हाथी रहता था। उन तीनोंमें बहुत मित्रता थी; पर उनमें परस्पर छोटे बड़ेका कोई भाव नहीं था, इसलिये यह भी निश्चित नहीं था कि किसके प्रति कौन कितनी मर्यादा प्रकट किया करे और किसका कौन कितना आदर किया करे। पर उन लोगोंने समझ लिया कि इस प्रकार मर्यादा रहित होकर विचरण करना ठीक नहीं है। अतः उन लोगोंने निश्चय किया कि पहले हम लोगोंको यह स्थिर कर लेना चाहिए कि हम लोगोंमें कौन बड़ा है और कौन छोटा; और तब बड़ेके प्रति छोटोंको आदर सम्मान प्रकट करना चाहिए।

वे लोग यह निश्चय करना चाहते थे कि हम लोगोंमें अवस्थामें कौन बड़ा है। सोचते सोचते उन्होंने यह जाननेका एक उपाय ढूँढ़ निकाला। एक दिन वे तीनों उस वट वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। इतनेमें तीतर और बन्दरने हाथीसे पूछा—"क्यों भाई, जब तुमने पहले पहल यह वट वृक्ष देखा था, तब यह कितना बड़ा था?" हाथीने कहा—"जब मैं बच्चा था, तब यह वट वृक्ष इतना छोटा था कि मैं इसे लाँघकर चला जाया करता था। जब मैं इसे अपने पेटके नीचे रखकर खड़ा होता था, तब इसकी ऊपरवाली शाखा मेरी नाभीसे स्पर्श करती थी।" फिर तीतर और हाथीने बन्दरसे यही प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया—

"मुझे तो स्मरण आता है कि जब मैं बच्चा था, तब मैं जमीन पर बैठा बैठा मुँह बढ़ाकर इसके ऊपरकी फुनगियाँ चबाया करता था।"

अंतमें बंदर और हाथीने तीतरसे भी यही प्रश्न किया। तीतरने उत्तर दिया—"पहले अमुक स्थान पर एक वट वृक्ष था। उसीके फल खाकर मैंने इस स्थान पर मल त्याग किया था। उसीसे यह वृक्ष उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस वृक्षके उत्पन्न होनेसे पहले ही मैं इसका हाल जनता हूँ; इसलिये मैं अवस्थामें तुम दोनोंसे बड़ा हूँ।"

इसपर बंदर और हाथीने उस चतुर तीतरसे कहा—"आप अवस्थामें हम दोनोंसे बड़े हैं। बड़ोंके प्रति जिस प्रकार आदर सम्मान प्रकट करना उचित है, अब उसी प्रकारका आदर सम्मान हम लोग आपके प्रति प्रकट किया करेंगे। हम लोग आपको अभिवादन किया करेंगे और आपके उपदेशके अनुसार चला करेंगे। आप भी समय समय पर कृपाकर हम लोगोंको उचित उपदेश दिया कीजिएगा।"

तबसे तीतर उन दोनोंको उपदेश देने लगा और स्वयं भी शील व्रतका पालन करने लगा। इस प्रकार पंचशीलसे संपन्न होकर वे तीनों उत्तम रूपसे जीवन व्यतीत करते हुए देव लोकके निवासके योग्य बन गए।

[इनमेंसे तीतर बोधिसत्व ही थे।]

वक जातक

प्राचीन कालमें बोधिसत्व किसी वनमें पद्म सरोवरके पासके एक वृक्ष पर वृक्ष-देवताके रूपमें निवास किया करते थे। वहाँ पास ही एक छोटा तालाब था, जिसका जल ग्रीष्म ऋतुमें बहुत घट जाता था। उस तालाबमें मछलियाँ रहा करती थीं। एक दिन एक बगलेने उन मछलियोंको देखकर मनमें सोचा कि इन सबको किसी प्रकार बहकाकर खा जाना चाहिए। यह सोचकर वह बहुत ही चिन्तित भावसे उस तालाबके किनारे जा बैठा।

मछलियोंने उस बगलेको इस प्रकार चिन्तित देखकर पूछा—"आप ऐसे उदास क्यों हैं?" बगलेने उत्तर दिया—"मुझे तुम्हीं लोगोंकी चिन्ता हो रही है।" मछलियोंने पूछा—"हमारे लिये कैसी चिंता?" बगलेने कहा—"इस तालाबका जल सूखकर बहुत घट गया है; यहाँ तुम लोगोंको खानेको यथेष्ट नहीं मिलता; गरमी भी बहुत पड़ने लग गई है। मैं यही सोच रहा हूँ कि अब यहाँ तुम लोगोंका कैसे निर्वाह होगा।" मछलियोंने कहा—"अच्छा तो फिर अब आप ही बतलाइए कि हम लोगोंको क्या करना चाहिए।" बगलेने कहा—"यदि तुम लोग मेरा विश्वास करो, तो एक उपाय हो सकता है। यहाँसे थोड़ी ही दूर पर एक और सरोवर है। उसमें पाँचों वर्णोंके पद्म होते हैं। मैं तुममेंसे एक एकको चोंचसे पकड़कर बारी बारीसे वहाँ पहुँचा सकता हूँ।" मछलियोंने कहा—"पृथ्वीके पहले कल्पसे लेकर आज तक कभी किसी बगलेको मछलियोंकी

रक्षाकी चिंता नहीं हुई। कहीं आप एक एक करके हम सबको खा तो नहीं जाना चाहते हैं ?" बगलेने कहा—"नहीं नहीं, यदि तुम सब लोग मेरा विश्वास करोगी, तो मैं तुम लोगोंको कदापि न खाऊँगा। मैंने जिस सरोवरकी बात कही है, यदि तुम लोग यह जानना चाहो कि वह सरोवर कहीं है भी या नहीं, तो तुम अपनेमेंसे एक मछली मेरे साथ कर दो। वह आप चलकर अपनी आँखोंसे देख आवे।" इसपर मछलियाँ एक बड़े काने मच्छको ले आईं और बोलीं—"आप इसीको अपने साथ ले जाइए।" मछलियोंने सोचा था कि इस बगलेसे यह मच्छ जल या स्थलमें कहीं उठ न सकेगा। पर बगला उस मच्छको उठाकर पासके एक बड़े सरोवरमें ले गया। वहाँ उस सरोवरमें उसे छोड़कर उसने दिखला दिया कि सरोवर कितना लंबा चौड़ा है; और फिर उसे लाकर उन्हीं मछलियोंमें छोड़ दिया। उस काने मच्छने सब मछलियोंसे उस नए सरोवरकी बहुत प्रशंसा की। अब मछलियाँ उस सरोवरमें जानेके लिये आतुर होने लगीं और बगलेसे बोलीं—"आपने हम लोगोंको बहुत ही अच्छा उपाय बतलाया है। अब आप हम लोगोंको उसी बड़े सरोवरमें ले चलिए।"

बगला सबसे पहले उसी काने मच्छको लेकर चला। उस सरोवरके पास पहुँचकर पहले तो उसने उसको जल दिखलाया और फिर उसके किनारेके एक वरुण वृक्ष पर उतरकर उसका मांस खा लिया और उसके काँटे आदि उसी वृक्षकी जड़में फेंक दिए। तब फिर वह पहलेवाले तालाब पर गया और मछलियोंसे बोला—"मच्छको मैं उस सरोवरमें छोड़ आया। अब तुममेंसे और जिसे चलना हो, वह चले।" इस प्रकार वह एक एक

करके सब मछलियोंको ले जाने लगा और वह तालाब मछलियोंसे खाली हो गया। अंतमें उसमें केवल एक केकड़ा रह गया। बगलेने उसे भी खाना चाहा; इसलिये कहा—"मैं सब मछलियोंको ले जाकर पद्मोंसे भरे हुए सरोवरमें रख आया हूँ। चलो, तुम्हें भी वहाँ पहुँचा दूँ।" केकड़ेने पूछा—"मुझे तुम किस प्रकार ले चलोगे?" बगलेने कहा—"चोंचमें पकड़कर।" केकड़ेने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि तुम मुझे कहीं मार्गमें ही फेंक दोगे, तो मेरी हड्डी पसली चूर चूर हो जायगी। मैं तुम्हारे संग न जाऊँगा"। बगलेने कहा—"नहीं, तुम घबराओ मत। मैं तुमको बहुत अच्छी तरह पकड़े रहूँगा"। केकड़ेने सोचा—जान पड़ता है कि इस धूर्त बगलेने उन मछलियोंको पानीमें नहीं छोड़ा है। देखूँ, मेरे साथ यह क्या करता है। यदि यह मुझे ले चलकर जलमें छोड़ दे, तब तो ठीक ही है। पर यदि यह मुझे जलमें न छोड़ेगा, तो मैं भी इसकी गरदन काट डालूँगा। यह सोचकर उसने बगलेसे कहा—"देखो भाई, तुम मुझे अच्छी तरह पकड़े न रह सकोगे। पर मैं केकड़ा हूँ। मैं तुमको बहुत अच्छी तरह पकड़े रह सकूँगा। यदि तुम मुझे अपना गला पकड़ने दो, तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ।"

केकड़ेकी चाल बगलेकी समझमें न आई और उसने उसकी बात मान ली। केकड़ेने बगलेकी गरदन पर बैठकर बहुत अच्छी तरह उसका गला पकड़ लिया और कहा—"अच्छा, अब चलो।" बगलेने पहले तो उसे ले जाकर वह सरोवर दिखलाया और तब वह उसे उस वृक्षकी ओर ले चला।

केकड़ेने कहा—"क्यों भाई, सरोवर तो इधर है। तुम मुझे

उधर क्यों ले चल रहे हो ?" बगलेने बिगड़कर कहा—"मैं क्या तेरा नौकर था जो तुझे इतनी दूर तक अपनी गरदन पर बैठाकर लाया ? इस वरुण वृक्षके नीचे काँटोंका जो ढेर लगा है, वह तुझे दिखाई नहीं देता ? मैंने जिस प्रकार सब मछलियोंको खा डाला है, उसी प्रकार तुझे भी खा जाऊँगा ।" यह सुनकर केकड़ेने कहा—"मछलियाँ मूर्ख थीं, इसी लिये तुम उनको खा गए। पर मुझे तुम न खा सकोगे। मुझे खाना तो दूर रहा, अब तुम स्वयं ही नहीं बच सकते। मैंने तुमको जिस प्रकार छला, वह तुम्हारी समझमें नहीं आया। मैं तुम्हारा गला काटकर यहीं भूमि पर फेंक दूँगा।" इतना कहकर वह जोरसे बगलेका गला दबाने लगा। पीड़ाके मारे बगलेने मुँह खोल दिया और उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने केकड़ेसे कहा—"भाई, मैं तुमको नहीं खाऊँगा। तुम कृपाकर मेरे प्राण छोड़ दो।"

केकड़ेने कहा—"यदि तुम अपने प्राण बचाना चाहते हो, तो सरोवर के किनारे चलो और वहाँ मुझे जलमें छोड़ दो।" इस पर बगला फिर सरोवरकी ओर बढ़ा और केकड़ेके कहनेके अनुसार उसने उसे वहाँ कीचड़में छोड़ दिया। लेकिन केकड़ेने जलमें गिरनेसे पहले ही सफाईसे बगलेका गला काट डाला था।

वरुण वृक्ष पर बैठे हुए उसके अधिदेवता बोधिसत्वने यह विलक्षण व्यापार देखकर केकड़ेको बहुत साधुवाद दिया और मधुर स्वरसे एक गाथा कही, जिसका आशय इस प्रकार था—

"जो मनुष्य सदा दूसरोंके साथ छल किया करता है, वह सुखी नहीं रह सकता। यह वंचक बगला इस केकड़ेके काटनेसे किस प्रकार मरकर नरक गया है!"

खदिरांगार जातक

प्राचीन कालमें सम्यक्सबुंद्ध काश्यपके ❀ समयमें किसी गाँवमें एक शीलवान्, धर्मपरायण और तत्वदर्शी स्थविर रहा करता था। उस गाँवके स्वामीने उसके भरण पोषणका भार अपने ऊपर ले लिया था। उसी समय एक और अर्हन् वहाँ आ पहुँचे जो अपने संघके सभी भिक्षुओंके साथ बहुत ही सम भावसे व्यवहार किया करते थे और कभी यह नहीं सोचते थे कि मैं सबमें प्रधान हूँ। ये महात्मा उक्त गाँवके स्वामीके घर पहुँचे। इससे पहले वे कभी उस गाँवमें नहीं आए थे। उनका आकार प्रकार देखकर वह जमींदार उनपर इतना मुग्ध हुआ कि सम्मान-पूर्वक उनके हाथसे भिक्षापात्र लेकर वह उन्हें अंदर ले गया और उनसे भोजन करनेके लिये अनुरोध करने लगा। थोड़ी देर तक उन महात्मासे कुछ धर्मोपदेश सुनकर जमींदारने कहा—"प्रभु, यहाँ पास ही मेरा एक विहार है। आप कृपया वहाँ चल-कर विश्राम करें। फिर तीसरे पहर मैं आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगा।" तदनुसार अर्हन् उस विहारमें चले गए और वहाँके स्थविरको बहुत ही आदरपूर्वक अभिवादन करके एक आसन पर बैठ गए। उस स्थविरने भी बहुत आदरपूर्वक उनकी अभ्य-र्थना की और पूछा—"आपने अभी तक भोजन किया है या नहीं?" अर्हन्ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं भोजन कर चुका हूँ।" स्थविरने पूछा—"आपने कहाँ भोजन किया है?" अर्हन्ने उत्तर दिया—"इसी गाँवमें, गाँवके स्वामीके यहाँ।" इसके उपरान्त

आगन्तुक अर्हन्‌को एक कोठरी मिल गई। उसीमें उन्होंने अपना भिक्षापात्र और चीवर रख दिया और एक आसन पर बैठकर ध्यानमग्न होकर वे परम आनन्दका अनुभव करने लगे।

तीसरे पहरके समय गाँवका स्वामी अपने सेवकोंके हाथ गंध, मालाएँ और तेलसे भरा दीपक लेकर उस विहारमें रहनेवाले स्थविरको प्रणाम करके पूछने लगा—"आज यहाँ एक अर्हन् अतिथि रूपमें आनेको थे। क्या वे आ गए हैं?" स्थविरने कहा—"हाँ, वे आए हैं।" पूछा—"वे कहाँ हैं?" उत्तर मिला—"उस कोठरीमें।" यह सुनकर जमींदार उस अर्हन्‌के पास गया और उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठकर उनसे धर्मोपदेश सुनने लगा। संध्याके उपरान्त जब कुछ ठण्ढा हुआ, तब उस जमींदारने चैत्य और बोधिसत्वकी पूजा की, प्रदीप जलाया और अर्हन् तथा स्थविर दोनोंको दूसरे दिन अपने यहाँ भोजन करनेका निमन्त्रण देकर वहाँसे अपने घर चला गया।

विहारमें रहनेवाले स्थविरने सोचा कि यह जमींदार मेरे हाथसे निकलना चाहता है। यदि यह अर्हन् यहाँ टिक गया, तो फिर मेरा कहीं ठिकाना न लगेगा। वह सोचने लगा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें यह अर्हन् यहाँ अधिक समय तक न ठहर सके, जल्दी ही यहाँसे चलता हो। जब उपस्थानके समय अर्हन्‌ने आकर उसको अभिवादन किया, तब उस स्थविरने उससे बात तक न की। अर्हन्‌ने उसके मनका भाव समझ लिया। उन्होंने जान लिया कि यह स्थविर यह समझकर घबरा रहा है कि कहीं मेरे कारण इसका यहाँका रंग फीका न पड़ जाय। वे चुपचाप फिर अपनी

कोठरीमें चले गए और ध्यानस्थ होकर अन्तर्दृष्टिका स्वर्गीय सुख भोगने लगे।

दूसरे दिन प्रभात होने पर स्थविरने एक चाल चली। उसे विहारके सब भिक्षुओंको यथा समय जगानेके लिये जोर जोरसे घण्टा बजाना चाहिए था और द्वार द्वार पर जाकर जोरसे खटखटाना चाहिए था। पर उस दिन उसने बहुत धीरेसे घण्टा बजाया और केवल नाखूनसे बहुत ही धीरेसे द्वार खटखटाया; और अकेला ही जमींदारके घर चला गया। जमींदारने उसके हाथसे भिक्षापात्र ले लिया और पूछा—"वे आगन्तुक कहाँ हैं?" स्थविरने उत्तर दिया—"मैं अपने मित्रका कोई समाचार नहीं जानता। मैंने घण्टा बजाया, द्वार खटखटाया, पर वे किसी प्रकार जागे ही नहीं। जान पड़ता है कि कल उन्होंने यहाँ जो अच्छा और अधिक भोजन किया था, वह अभी तक पचा नहीं; इसी लिये वे अभी तक सो रहे हैं।"

उधर उन अर्हन्‌ने पहले तो भिक्षाचर्याके समय तक प्रतीक्षा की और तब स्नान करनेके उपरान्त वेश-परिवर्त्तित करके और भिक्षापात्र तथा चीवर लेकर वे आकाश मार्गसे कहीं और चले गए।

भूस्वामीने विहारवाले स्थविरको घृत, मधु, शक्कर और परमान्न भोजन कराया और सुगन्धित चूर्ण द्वारा उसका पात्र साफ कराकर फिर उसे पायससे भरकर कहा—"महाशय, जान पड़ता है कि अर्हन् मार्गके श्रमके कारण थके हुए हैं। आप उनके लिये यह पायस लेते जाइए।" स्थविरने बिना

किसी प्रकारकी आपत्ति किए वह पात्र हाथमें ले लिया और चलते समय सोचने लगा कि यदि यह अर्हन् एक बार भी इस प्रकारका परमान्न खा लेगा, तो फिर धक्के और झाड़ू खाने पर भी यहाँसे न टलेगा। और यदि यह पायस मैं किसी दूसरेको दे देता हूँ, तो बात खुल जायगी। यदि मैं इसे जलमें फेंक दूँ, तो इसका घी पानी पर उतरा आवेगा। यदि जमीन पर फेंक देता हूँ, तो गाँव भरके कौवे आकर एकत्र हो जायँगे। इसी प्रकार बहुत कुछ ऊहापोह करनेके उपरान्त उसने एक स्थान पर आग जलती हुई देखी। उसने तुरन्त एक कोनेमें कुछ अङ्गारे सरकाकर उनपर वह पायस गिरा दिया और उसके ऊपर कुछ और अङ्गारे छोड़कर वह अपने विहारमें चला गया। वहाँ पहुँचने पर जब उसने अर्हन्को न पाया, तो उसका वह भाव बदल गया और उसने सोचा कि ये महात्मा और सज्जन थे, मेरे मनका भाव समझकर कहीं और चले गए।

अब उसे मन ही मन इस बातका पश्चात्ताप होने लगा कि देखो, इस पेटके लिये मैंने कैसा पाप किया! इस अनुतापके कारण थोड़े ही दिनोंमें वह सूखकर प्रेतके समान हो गया और मरनेके उपरान्त निरयमें जाकर लाख वर्ष तक दुःख भोगता रहा। इसके उपरान्त इस पापके कारण उसे पाँच सौ बार यक्षकी योनिमें जन्म लेना पड़ा। इन सब जन्मोंमें उसने प्रत्येक जन्ममें केवल एक ही एक बार भर पेट गर्भमल खाया था; और कभी उसे भर पेट भोजन न मिला था। इसके उपरान्त उसे फिर पाँच सौ बार कुत्तेका जन्म धारण करना पड़ा था। इन जन्मोंमें भी उसे केवल एक बार वमन किया

हुआ अन्न भर पेट मिला था; और नहीं तो कभी उसका पेट नहीं भरा था। कुत्तेवाले जन्मोंका अन्त हो जाने पर उसने फिर मनुष्यका शरीर धारण किया और काशीमें एक भिक्षुकके घर जन्म ग्रहण किया। उस समय उसका नाम मित्रविन्दक था। उसके दुर्भाग्यके कारण उसके परिवारकी दुर्गति सौगुनी बढ़ गई। इसलिये उसे निर्वाहके हेतु काँजीके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता था; और वह काँजी भी इतनी थोड़ी होती थी कि पेटमें जाने पर नाभी तक ही रह जाती थी, उससे ऊपर पहुँचती ही न थी। जब उसके माता-पिता भूखों मरने लगे, तब उन्होंने भी उसे यह कहकर घरसे निकाल दिया कि—"दूर हो, कालकर्णी!"

उस समय बोधिसत्व वाराणसीमें एक बहुत ही प्रसिद्ध अध्यापक थे। पाँच सौ शिष्य उनसे शिल्पकी शिक्षा पाते थे। उन दिनों वाराणसीके निवासियोंमें यह प्रथा थी कि वे दरिद्र बालकोंके भरण-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा आदिकी व्यवस्था कर दिया करते थे। घरसे निकाला हुआ मित्रविन्दक जब घूमता फिरता वाराणसीमें पहुँचा, तब वह इसी प्रथाके प्रसादसे बोधिसत्वके पास पहुँचकर उनके पुण्यशिष्य * के रूपमें शिक्षा पाने लगा। परन्तु मित्रविन्दक बहुत ही परुष प्रकृतिका तथा उद्दण्ड था। वह सदा अपने सहपाठिकायोंके साथ मार-पीट किया करता था; और उसे जो कुछ भर्त्सना

* पुण्यशिष्य = वह शिष्य जिसे केवल धर्मार्थ शिक्षा दी जाय और जिसके निर्वाहका व्यय उसके माता-पितासे न मिले, बल्कि सार्वजनिक दान भाण्डारसे दिया जाय।

की जाती थी या दण्ड दिया जाता था, उसका उसपर कोई प्रभाव नहीं होता था। ऐसे छात्रके रहनेके कारण बोधिसत्वकी पाठशालाकी निन्दा होने लगी और उनकी आय भी घट चली। उधर मित्रविन्दक भी एक दिन अपने सहपाठियोंसे लड़ झगड़कर और गुरुके उपदेशकी उपेक्षा करके वहाँसे भाग गया और अनेक स्थानोंमें घूमता-फिरता राज्यके एक प्रत्यन्त ग्राममें * पहुँचा। वहाँ वह मेहनत मजदूरी करके अपना पेट पालने लगा। वहीं एक दरिद्र स्त्रीके साथ उसका पाणिग्रहण हो गया और उसके गर्भसे उसे दो सन्तानें भी उत्पन्न हुईं।

इसके उपरान्त उस ग्रामके निवासियोंने मित्रविन्दकको इस बातकी व्याख्या करनेके लिये शिक्षक नियुक्त किया कि सुशासन या सुधर्म किसे कहते हैं और दुःशासन या कुधर्म किसे कहते हैं। उसके निर्वाहके लिये कुछ वेतन निश्चित कर दिया गया और रहनेके लिये गाँवके द्वार पर एक कुटी बनवा दी गई। पर मित्रविन्दकके केवल वहाँ निवास करनेके कारण ही उस ग्रामके निवासी शीघ्र ही राजाके कोपभाजन हो गए और उन्हें एक दो बार नहीं, सात सात बार दण्ड भोगना पड़ा। उनके घर-बार भी सात बार जलकर राख हो गए और उनके तालों आदिका पानी भी सात बार सूख गया।

अब वे लोग सोचने लगे कि मित्रविन्दकके आनेके पहले तो हम लोग बहुत सुखी थे; पर जबसे वह आया है, तबसे हम लोगों

---

* प्रयन्त ग्राम = राज्यकी सीमा परका गाँव।

पर नित्य नई विपत्तियाँ आती हैं। इसलिये उन लोगोंने उसे लाठियोंसे मार मारकर गाँवसे बाहर निकाल दिया। मित्रविन्दक अपने परिवारको साथ लेकर घूमता फिरता एक ऐसे वनमें पहुँचा, जिसमें राक्षस रहा करते थे। वहाँ उन राक्षसोंने उसकी स्त्री और दोनों पुत्रोंको मार डाला। उसने किसी प्रकार वहाँसे भागकर अपने प्राण बचाए और अनेक स्थानोंमें भटकता हुआ अन्तमें समुद्र तटके गम्भीरा नामक बन्दरमें पहुँचा। उस बन्दरमें एक जहाज कहीं जानेको था। मित्रविन्दकने उसी जहाज पर नौकरी कर ली और उसके साथ चल पड़ा। बन्दरसे चलने पर एक सप्ताह तक तो जहाज ठीक चलता रहा, पर एक सप्ताहके उपरान्त वह समुद्रमें बिलकुल निश्चल होकर खड़ा हो गया। जान पड़ने लगा कि मानों वह समुद्रमें डूबे हुए किसी पहाड़में अटक गया हो। जहाज परके लोगोंने यह जाननेके लिये गोटी डाली कि किस कालकर्णीके अभाग्यके कारण जहाज इस प्रकार रुका है। सात बार गोटी डाली गई और हर बार मित्रविन्दका ही नाम निकला। इसलिये उन लोगोंने मित्रविन्दकको बाँसके एक बेड़ पर बैठाकर समुद्रमें उतार दिया। मित्रविन्दकके उतरते ही जहाज फिर अच्छी तरह चलने लगा।

मित्रविन्दक बड़े कष्टसे बाँसके उस बेड़े पर बैठा और तरङ्गोंके साथ साथ इधर उधर बहने लगा। सम्यक्संबुद्ध काश्यपके समयमें शील आदिका पालन करके उसने जो पुण्य संचित किया था, इस समय उसीके प्रभावसे उसे समुद्रमें स्फटिकका एक विमान मिला। उस विमान पर प्रेत भावसे आपन्न और मायाविनी चार देवकन्याएँ थीं। उन्हीं देवकन्याओंके साथ एक

सप्ताह तक उसने सुखपूर्वक विहार किया। विमान पर रहनेवाले प्रेत एक सप्ताह तक सुख और एक सप्ताह तक दुःख भोगा करते हैं। अतः जब सुखवाला सप्ताह समाप्त हो गया, तब वे देवकन्याएँ दुःख भोगनेके लिये कहीं और चली गईं। चलते समय उन्होंने मित्रविन्दकसे कह दिया था कि जब तक हम लोग लौटकर न आवें, तब तक तुम यहीं रहना। पर उन देवकन्याओंके जाते ही मित्रविन्दक अपने बेड़े पर बैठकर चाँदीके एक विमान के पास जा पहुँचा। उस विमान पर उसे आठ देवकन्याएँ दिखलाई दीं। वहाँसे आगे चलकर उसने एक मणिमय विमान पर सोलह देवकन्याएँ और फिर एक और विमान पर, जो सोनेका था, चौबीस देवकन्याएँ देखीं। पर उसने उनमेंसे किसीसे बात तक नहीं की और अपना बेड़ा चलाता चलाता द्वीप पुंजकी एक यक्षपुरीमें जा पहुँचा। वहाँ एक यक्षिणी बकरीका रूप धारण करके घूम रही थी। मित्र-विन्दकने उसे मारकर उसका मांस खाना चाहा और इसी लिये उसका पैर पकड़ लिया। इसपर उस यक्षिणीने ऐसे जोरसे उसे उछाला कि वह समुद्र पार करके आकाश मार्गसे उड़ता हुआ वाराणसीकी काँटोंसे भरी हुई एक परिखामें जा गिरा।

उसी परिखाके पास राजाकी बकरियाँ चरा करती थीं। चोर लोग जब अवसर पाते थे, तब उनमेंसे एक दो बकरियाँ चुरा ले जाया करते थे। उन चोरोंको पकड़नेके लिये बकरियोंके दो चार रक्षक उस समय वहाँ छिपे हुए बैठे थे। मित्रविन्दक खड़ा होकर उन बकरियोंको देखने लगा। उसने मनमें सोचा कि एक बार द्वीपमें मैंने उस बकरीका पैर पकड़ा था, जिसने मुझे

उठाकर यहाँ फेंक दिया। यदि अब मैं इनमेंसे किसी बकरीका पैर पकड़ूँ, तो सम्भव है कि वह मुझे उठाकर फिर समुद्रमें देव-कन्याओंके विमानोंके पास फेंक दे। यह सोचकर उसने तुरंत एक बकरीका पैर पकड़ा, जिससे बकरी मिमियाने लगी। उसका मिमियाना सुनते ही बकरियोंके रक्षक वहाँ आ पहुँचे और बोले—"तू राजाकी बहुत सी बकरियाँ चुराकर खा गया है।" यह कह-कर वे लोग उसे मारते मारते राजाके पास ले चले।

ठीक उसी समय बोधिसत्व अपने पाँच सौ शिष्योंको साथ लेकर स्नान करनेके लिये नगरके बाहर निकल रहे थे। मित्र-विन्दकको देखते ही उन्होंने पहचान लिया और वे बकरियोंके रक्षकोंसे बोले—"यह तो मेरा शिष्य है। तुम लोगोंने इसे क्यों पकड़ा है?" उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज, यह चोर है। यह बकरी चुराकर भागना चाहता था; इसी बीचमें हम लोगोंने इसे पकड़ लिया।" बोधिसत्वने कहा—"तुम लोग इसे मेरे सपुर्द कर दो। यह मेरा दास होकर रहेगा।" उन लोगोंने कहा—"अच्छी बात है।" और मित्रविन्दकको बोधिसत्वके हाथ सौंपकर वे लोग चले गए। उस समय बोधिसत्वने उससे पूछा—"तुम इतने दिनों तक कहाँ थे?" उसने आदिसे अन्त तक अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सब समाचार सुनकर बोधिसत्वने कहा—"जो अपने हितैषियोंकी बात नहीं सुनता, उसकी इसी प्रकार दुर्दशा होती है।"

इसके उपरान्त बोधिसत्व और मित्रविन्दक दोनों ही अपने अपने कर्मों का फल भोगनेके लिये दूसरे लोकोंमें चले गए।

कपोत जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने कबूतरका जन्म धारण किया था। उन दिनों काशीनिवासी पक्षियोंके सुभीते और आश्रयके लिये स्थान स्थान पर टोकरियाँ बाँधकर लटका दिया करते थे। वाराणसीके प्रधान श्रेष्ठीके पाचक या रसोईदारने भी अपनी पाकशालामें एक टोकरी लटका रखी थी। बोधिसत्व उसी टोकरीमें रहा करते थे। वे नित्य प्रातःकाल आहारके लिये इधर उधर चले जाते थे और सन्ध्या समय लौटकर उसी टोकरीमें सो रहा करते थे।

एक दिन एक कौवा उस पाकशालाके ऊपरसे उड़ता हुआ चला जा रहा था। जब वहाँ उसे कई प्रकारके मांसों आदिकी गंध मिली, तो वह कुछ पानेके लालचमें पास ही बैठकर सोचने लगा कि कोई ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमें मुझे भी इसका कुछ स्वाद मिले। जब संध्या समय उसने बोधिसत्वको उस पाकशालामें घुसते हुए देखा, तब उसने सोचा कि इसी कबूतर की सहायतासे काम निकालना चाहिए।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह फिर उसी पाकशालाके पास आ पहुँचा; और जब बोधिसत्व निकलकर बाहर जाने लगे, तब वह भी उनके पीछे पीछे हो लिया। बोधिसत्वने पूछा—"भाई, तुम मेरे साथ साथ क्यों चले आ रहे हो?" कौवा बोला—"महाराज, आपकी चाल ढाल मुझे बहुत अच्छी लगती है। अतः मैं आज-

से आपका अनुचर होकर रहूँगा।" बोधिसत्वने कहा—"भाई, मेरा खाद्य कुछ और है, तुम्हारा कुछ और। यदि तुम मेरे अनुचर बनोगे, तो तुम्हें बहुत कठिनता होगी।" कौवेने कहा—"महाराज, आप जिस समय अपने भोजनकी चिन्ता करेंगे, उस समय मैं अपने भोजनकी व्यवस्था कर लूँगा; और फिर आपके साथ साथ रहा करूँगा।" बोधिसत्वने कहा—"अच्छी बात है। पर मेरे साथ तुमको बहुत सावधान होकर रहना पड़ेगा।"

इस प्रकार उस कौवेको सतर्क करके बोधिसत्व इधर उधर तृण बीज आदि चुगने लगे। कौवा भी गोबर आदि उलट पलट-कर कीड़े मकोड़े खाने लगा और थोड़ी देर बाद बोधिसत्वके पास आकर बोला—"महाराज, आपको भोजन करनेमें बहुत देर लगती है। अधिक भोजन करना अच्छा नहीं होता।" सन्ध्या समय जब बोधिसत्व अपने निवास स्थानकी ओर जाने लगे, तब कौवा भी उनके पीछे पीछे चला और उनके साथ पाकशालामें घुस गया। रसोईदारने सोचा कि आज कबूतरके साथ एक और पक्षी आया है; इसलिये उसने उसके वास्ते भी एक दौरी लटका दी। तब से ये दोनों पक्षी एक साथ ही उस पाकशालामें रहने लगे।

एक दिन श्रेष्ठीने बहुत सा मांस और मछली मँगाई। रसोई-दारने उन सबको पाकशालामें इधर उधर टाँग दिया। सब चीजें देखकर कौवेकी राल टपकने लगी। उसने सोचा कि कल मैं कबूतरके साथ चुगने न जाऊँगा और दिन भर यहीं रहकर आनन्दसे भर पेट मांस और मछली खाऊँगा। इसके उपरान्त वह रात भर पीड़ाका बहाना करके चिल्लाता रहा। प्रातःकाल

होने पर बोधिसत्वने उससे कहा—"चलो भाई, कहीं चर चुग आवें।" कौवेने कहा—"आज आप अकेले ही जायँ। मेरे पेट-में बहुत पीड़ा हो रही है।" बोधिसत्वने कहा—"भाई, मैंने तो आज तक कभी नहीं सुना कि कौवेके पेटमें भी पीड़ा होती है। उन्हें तो रातको भी पहर पहर भर पर भूख लगा करती है। जान पडता है कि आज तुम यहाँका मांस और मछली आदि खानेके लिये लालायित हो रहे हो। तुम मेरे साथ चलो। मनुष्य-का भोजन पचाना तुम्हारे लिये बहुत कठिन होगा। इस प्रकार लोभके फेरमें मत पड़ो। मेरे साथ चलो और नित्यकी भाँति बाहरसे खा पी आओ।" कौवेने कहा-"नहीं महाराज, आज तो मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है कि उठकर कहीं जा सकूँ।" बोधि-सत्वने कहा-"अच्छा, कोई चिन्ता नहीं। तुम्हारे व्यवहारसे ही तुम्हारे उद्देश्यका पता चल जायगा। पर देखो, मैं तुमको सावधान किए देता हूँ। कहीं लोभमें पड़कर कोई अनुचित कृत्य न कर बैठना।" कौवेको इस प्रकार उपदेश देकर बोधिसत्व नित्यके अनुसार बाहर चले गए।

इधर रसोईदारने मछली और मांस लेकर उनके अनेक प्रकारके पाक बनाना आरम्भ किया। जिन बरतनोंमें चीजें पकाई जा रही थीं, ढकन सरकाकर उनका मुँह भाप निकलनेके लिये उसने खोल दिया था। थोड़ी देरमें वह बाहर जाकर पसीना पोंछने लगा। उसी समय कौवेने गरदन बाहर निकालकर देखा कि रसोईदार बाहर गया है। उसने सोचा कि मांस खाकर मनो-रथ पूर्ण करनेका यह अच्छा अवसर है। वह सोचने लगा कि मैं मांसका कोई बड़ा लोथड़ा खाऊँ या उसके छोटे छोटे टुकड़े

खाऊँ। छोटे छोटे टुकड़ोंसे तो जल्दी पेट भरेगा नहीं; इसलिये बड़ा टुकड़ा लेकर इसी दौरीमें आ बैठना चाहिए और यहाँ बैठकर भर पेट खाना चाहिए। यह सोचकर वह निकला और एक बरतनके ढक्कनके ऊपर जा पड़ा जिससे ढक्कन गिर पड़ा और झन् झन् शब्द हुआ। वह झनझनाहट सुनते ही रसोईदार पाकशालामें आ पहुँचा और कौवेको देखकर बोला—"मैं अपने स्वामीके लिये जो मांस बनाता हूँ, वह यह कौवा खा रहा है। मैं तो अपने स्वामीका सेवक हूँ, कुछ इसका सेवक नहीं हूँ।" रसोईदारने द्वार बन्द करके उस कौवेको पकड़ लिया, उसके सारे शरीर परसे पर आदि नोच डाले, अदरक, नमक और जीरा आदि एक साथ पीसकर उसके सारे शरीरमें लगा दिया और उसी अवस्थामें उसे दौरीमें रख दिया। वह मारे पीड़ाके जोर जोरसे चिल्लाने लगा। जब सन्ध्या समय बोधिसत्व आए और उन्होंने उसकी वह दुरवस्था देखी, तो समझ लिया कि यह लोभी कौवा मेरी बात न माननेके कारण ही इतना कष्ट पा रहा है। इसपर उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"जो स्वेच्छाचारी अपने हितैषी मित्रकी बात नहीं मानता, उसके लिये विपत्ति भोगना अनिवार्य होता है; और इसका प्रमाण यह कौवा है।"

यह गाथा कह चुकनेके उपरान्त बोधिसत्वने कहा कि अब मैं भी इस स्थान पर नहीं रह सकता। इसके बाद वे वहाँसे कहीं और चले गए। कौवा उसी समय वहीं पंचत्वको प्राप्त हुआ। रसोईदारने उसे दौरी समेत कूड़ेखानेमें फेंक दिया।

वेणुक जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने काशीके एक बहुत सम्पन्न कुलमें जन्म लिया था। जब उन्हें कुछ ज्ञान हुआ, तब उन्होंने सोचा कि कामनासे ही सब दुःख होते हैं और निष्काम रहनेमें ही पूर्ण सुख है। इसलिये वे कामनाओंका परित्याग करके हिमालय चले गए और वहाँ उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और ध्यानके बलसे पंच अभिज्ञा ❀ तथा आठो समापत्तियाँ प्राप्त कर लीं। वे सदा ध्यानमें मग्न रहते थे। धीरे धीरे वहाँके पाँच सौ तपस्वी उनके शिष्य हो गए। उन सब शिष्योंको अपने पास बैठाकर वे शिक्षा दिया करते थे।

एक दिन विषधर साँपका बच्चा विचरण करता हुआ इनमेंसे एक तपस्वीके घरमें पहुँचा। उसे देखकर उस तपस्वीके मनमें पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे उठाकर बाँसकी एक पोर या नलीमें रख दिया और उसकी रक्षा तथा पालन करने लगे। साँपका बच्चा बाँसकी पोरमें रहा करता था, इसलिये लोग उसे वेणुक कहा करते थे; और तपस्वी उसका पुत्रवत् पालन करते थे, इसलिये लोग उन्हें वेणुक-पिता कहते थे।

जब बोधिसत्वने सुना कि एक तपस्वीने साँपका एक बच्चा पाला है, तब उन्होंने उस तपस्वीको बुलाकर पूछा—"क्या यह बात ठीक है कि तुमने साँपका बच्चा पाला है?" तपस्वीने कहा—"जी हाँ, गुरुदेव।" बोधिसत्वने कहा—"साँपका

* ऋद्धि (आकाश मार्गसे विचरण करना आदि) दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, जातिस्मरत्व और दिव्यचक्षु ये पाँचो पंच अभिज्ञा कहलाते हैं।

कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। तुम उसे अपने पास मत रक्खो।" तपस्वीने कहा—"महाराज, शिष्य जिस प्रकार आचार्यके लिये प्रिय है, उसी प्रकार साँपका यह बच्चा मेरे लिये प्रिय है। मैं उसे छोड़कर जी नहीं सकूँगा।" बोधिसत्वने कहा—"*तो फिर जान पड़ता है कि इसी साँपके काटनेसे तुम्हारा* प्राणान्त होगा।" पर तपस्वीने बोधिसत्वकी बात पर ध्यान नहीं दिया और साँपके बच्चेको नहीं छोड़ा।

इसके थोड़े ही दिनों बाद सब तपस्वी वन्य फल खानेके लिये गए। एक स्थान पर बहुत से फल आदि देखकर सब तपस्वी दो तीन दिन तक वहीं रह गए। वेणुक-पिता भी वेणुकको उसी पोरमें बन्द करके गए थे। दो तीन दिन बाद लौटने पर वे वेणुकको खोलकर खिलाने लगे। ज्यों ही उन्होंने पोरका मुँह खोलकर कहा—"आओ पुत्र, तुम बड़े भूखे हो।" त्यों ही भूखके कारण क्रुद्ध साँपने उनकी उँगलीमें काट लिया और आप निकलकर जंगलकी ओर चला गया।

साँपके काटनेसे वेणुक-पिताके प्राण निकल गए। तपस्वियोंने यह समाचार बोधिसत्वको दिया। उन्होंने शवदाह करनेकी आज्ञा दी; और जब दाह हो चुका, तब सब तपस्वियोंको एकत्र करके उन्हें उपदेश देनेके लिये नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"*जो स्वेच्छाचारी अपने हितैषी मित्रकी बात पर ध्यान* नहीं देता, उसके प्राण अवश्य जाते हैं। यह वेणुक-पिता इस बातका प्रमाण है।"

इसके उपरान्त बोधिसत्वने ब्रह्मविहार प्राप्त किया और ब्रह्मलोकको चले गए।

मशक जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्व वाणिज्य करके जीविका निर्वाह करते थे। उन दिनों काशी राज्यके एक प्रत्यन्त ग्राममें बहुत से सूत्रधर या बढ़ई रहा करते थे। उनमेंसे पके हुए बालोंवाला एक सूत्रधर एक दिन काठका एक टुकड़ा रँदकर चौरस कर रहा था। इतनेमें एक मच्छड़ने उसके माथे पर बैठकर जोरसे उसे काटा। सूत्रधरका पुत्र पास ही बैठा हुआ था। उसने पुत्रसे कहा—"मेरे माथे पर मच्छड़ बैठा हुआ काट रहा है, तुम उसे उड़ा दो।" पुत्रने कहा—"आप स्थिर होकर बैठे रहिए। मैं एक ही आघातमें मच्छड़ उड़ा देता हूँ।" इतनेमें बोधिसत्व भी वहाँ पहुँचकर उस सूत्रधरके पास जा बैठे। सूत्रधरने फिर कहा—"बेटा, मच्छड़ उड़ा दो।" इसपर पुत्रने तेज धारवाली एक कुल्हाड़ी उठाकर यह कहते हुए जोरसे उसके सिर पर मारी कि—"लो मच्छड़को मार डालता हूँ।" उस आघातसे वृद्धका मस्तक फट गया और वह तुरन्त मर गया। उस समय बोधिसत्वने सोचा कि ऐसे हितैषीकी अपेक्षा तो बुद्धिमान् शत्रु ही अच्छा है; क्योंकि वह दण्डके भयसे मनुष्यकी हत्या तो नहीं करेगा। इसपर उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है। मूर्ख मित्र किस कामका! इस महामूर्ख पुत्रने मच्छड़ मारते मारते अपने पिताको मार डाला।"

इसके उपरान्त बोधिसत्व अपने कामसे कहीं और चले गए। सूत्रधरके जाति-भाइयोंने उसका मृतक संस्कार किया।

आरामदूषक जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें एक बार घोषणा हुई कि अमुक पर्वके उपलक्षमें एक उत्सव होगा। भेरीका शब्द सुनते ही सब नगरनिवासी उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये दौड़ पड़े।

उस समय राजाके उद्यानमें बहुत से बन्दर रहा करते थे। उद्यानपालने सोचा कि नगरमें पर्वके उपलक्षमें आमोद प्रमोद हो रहा है। मैं उद्यानमें जल सींचनेका काम बन्दरोंके सपुर्द करके आमोद देख आऊँ। बन्दरोंके दलपतिके पास जाकर उसने कहा—"इस उद्यानमें रहकर तुम लोग अनेक प्रकारके सुख भोगते हो। इसके पुष्प, फल और पल्लव खाते हो। आज नगरमें आमोद प्रमोद हो रहा है। मैं वही देखने जाता हूँ। जब तक मैं वहाँसे लौटकर आऊँ, तब तक तुम लोग मिलकर मेरे कुछ वृक्षोंमें पानी दे दो।" बन्दरोंने कहा—"हाँ हाँ, हम लोग पानी दे देंगे।" उद्यानपालने कहा—"देखो, कहीं ऐसा न हो कि भूल जाओ।"

उद्यानपालने बन्दरोंको जल सींचनेके लिये चमड़े और काठके बने पात्र दे दिए। वे पात्र लेकर सब बन्दर पौधोंमें जल देने लगे। इसपर उनके दलपतिने उनसे कहा—"देखो, जल व्यर्थ न जाय। जल सींचनेसे पहले पौधेको उखाड़कर यह देख लो कि उसकी जड़ कितनी गहरी है। जिसकी जड़ अधिक गहरी और भारी हो, उसमें अधिक जल दो; और

जिसकी जड़ छोटी हो, उसमें कम जल दो; क्योंकि इस समय हमारे पास जितना जल है, उसके समाप्त हो जाने पर और जल मिलना कठिन हो जायगा।" बन्दरोंने सोचा कि बात तो बहुत ठीक है। इसलिये वे अपने दलपतिके परामर्शके अनुसार काम करने लगे। एक बुद्धिमान् मनुष्य बन्दरोंका यह तमाशा देख रहा था। उसने उससे पूछा—"पानी सींचनेसे पहले तुम लोग एक एक पौधा उखाड़कर उसकी जड़ क्यों देखते हो ?" बन्दरोंने कहा—"हमारे दलपतिकी यही आज्ञा है।" बन्दरोंका यह उत्तर सुनकर वह सोचने लगा कि जो लोग मूर्ख होते हैं, वे यदि अच्छा काम भी करना चाहते हैं, तो भी काम बिगाड़ बैठते हैं। इसके उपरान्त उसने इस आशयकी *गाथा* कही—

"यदि कोई मूर्ख कोई अच्छा काम करना चाहता है, तो भी उससे अनर्थ हो जाता है। इसलिये मूर्खका कभी विश्वास न करना चाहिए। ये मूर्ख बन्दर जल सींचनेका भार लेकर उद्यानका नाश कर रहे हैं।"

वह बुद्धिमान् पुरुष बन्दरोंको इस प्रकार भर्त्सना करके अपने अनुचरों सहित उद्यानसे बाहर चला गया।

[बोधिसत्व ही उस बुद्धिमान् पुरुषके रूपमें थे।]



वेदब्भ जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें किसी गाँवमें "वेदब्भ" मन्त्रका ज्ञाता एक ब्राह्मण रहता था। इस वेदब्भ मन्त्रमें अद्भुत शक्ति थी। कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंके योगके समय इस मन्त्रका पाठ करके आकाशकी ओर देखनेसे ही सातों प्रकारके रत्नोंकी वृष्टि होने लगती थी। बोधिसत्व विद्याभ्यासके लिये इसी ब्राह्मणके शिष्य हुए थे।

एक दिन वह ब्राह्मण बोधिसत्वको अपने साथ लेकर किसी कामसे चेतिय राज्यमें जानेके लिये घरसे निकला। मार्गमें एक वन पड़ता था। उस वनमें पाँच सौ दस्यु रहा करते थे, जो "प्रेषणक" कहलाते थे। इनके उपद्रवसे पथिकोंको सदा बहुत अधिक कष्ट हुआ करता था। इन लोगोंके "प्रेषणक" कहलानेका एक कारण था। जब ये दो पथिकोंको एक साथ पकड़ पाते थे, तब उनमेंसे एकको ओलमें रखकर दूसरेसे कह देते थे कि तुम जाकर इतना धन ले आओ और तब अपने साथीको ले जाओ। जब पिता और पुत्रको एक साथ पकड़ पाते थे, तब पितासे कहते थे कि तुम जाकर इतना धन ले आओ और तब आकर अपने पुत्रको छुड़ा ले जाओ। इसी प्रकार जब माता और कन्याको एक साथ पकड़ पाते थे, तब माताको धन लानेके लिये भेज देते थे; जब दो सगे भाइयोंको पकड़ पाते थे, तब बड़े भाईको धन लानेके लिये भेज देते थे; जब आचार्य और शिष्यको पकड़ पाते थे,

तब शिष्यको धन लानेके लिये भेज देते थे। तात्पर्य यह कि वे एकको ओलमें रखकर दूसरेको धन लानेके लिये भेज दिया करते थे, इसी लिये वे "प्रेषणक" कहलाते थे।

इन्हीं प्रेषणकोंने उस ब्राह्मण और बोधिसत्वको पकड़ लिया और अपने सम्प्रदायकी प्रथाके अनुसार ब्राह्मणको रोककर बोधिसत्वको निष्क्रय लानेके लिये छोड़ दिया। बोधिसत्वने आचार्यको प्रणाम करके कहा—"मैं दो एक दिनमें निश्चय ही धन लेकर लौट आऊँगा। मैं जिस प्रकार बतलाता हूँ, यदि आप उसी प्रकार चलें, तो फिर आपके लिये किसी प्रकारका भय न रह जायगा। इस समय रत्न-वर्षाका योग है। इस विपत्तिके कारण दुःखी होकर कहीं मन्त्र पाठ करके रत्नोंकी वर्षा न करा डालिएगा। यदि रत्न-वर्षा हो गई, तो ये पाँच सौ दस्यु मिलकर आपको मार डालेंगे।" आचार्यको इस प्रकार सावधान करके बोधिसत्व निष्क्रय लानेके लिये वहाँ से चले गए।

सन्ध्या समय दस्युओंने ब्राह्मणको बाँधकर बैठा दिया। इतनेमें क्षितिजमें पूर्वकी ओर पूर्ण चन्द्र उदित हुआ। ब्राह्मणने नक्षत्र देखकर समझ लिया कि अब महायोग उपस्थित हुआ है। उन्होंने सोचा—"मैं व्यर्थ इतना कष्ट क्यों सहूँ। मन्त्र पढ़कर रत्नोंकी वर्षा करा दूँ और इनको निष्क्रय देकर अपना पीछा छुड़ाऊँ। फिर जहाँ मेरा जी चाहेगा, वहाँ मैं स्वतंत्रतापूर्वक जा सकूँगा।" यह सोचकर उन्होंने दस्युओंसे पूछा—"तुम लोगोंने मुझे क्यों बाँध रखा है?" उन्होंने उत्तर दिया—"धन पानेके लिये हम लोगोंने आपको बाँध रखा है।" ब्राह्मणने कहा—"यदि

तुम लोग धन ही लेना चाहते हो, तो मुझे खोलकर स्नान कराओ, नए वस्त्र पहनाओ, मेरे शरीर पर गन्ध आदिका लेप करो और मुझे पुष्पोंसे विभूषित करके एकान्त स्थानमें बैठा दो।" दस्युओंने इन सब बातोंकी तुरन्त व्यवस्था कर दी। जब ब्राह्मण-ने देखा कि नक्षत्रयोग आ गया है, तब उन्होंने मन्त्र पढ़कर आकाशकी ओर देखा। इतनेमें ढेरके ढेर रत्न बरसने लगे। दस्युओंने उन रत्नोंको एकत्र अपने अपने उत्तरीय वस्त्रमें उनकी पोटलियाँ बाँधीं और वहाँसे चल पड़े। ब्राह्मण भी उनके पीछे हो लिया।

परन्तु भाग्यकी लीलाएँ भी बहुत ही विलक्षण हुआ करती हैं। इतनेमें और पाँच सौ दस्युओंने आकर उन प्रेषणकोंको पकड़ लिया। प्रेषणकोंने पूछा—"तुम लोगोंने हमें क्यों पकड़ लिया है?" उन्होंने कहा—"धन पानेके लिये।" प्रेषणकोंने कहा—"यदि तुम लोग धन लेना चाहते हो, तो इस ब्राह्मणको पकड़ो। यह जब आकाशकी ओर देखता है, तब आकाशसे रत्नोंकी वर्षा होने लगती है। हम लोगोंके पास जो धन है, वह इसी ब्राह्मणका दिया हुआ है।" यह सुनकर उन दस्युओंने प्रेषणकोंको तो छोड़ दिया और ब्राह्मणको पकड़कर कहा—"हम लोगोंको भी धन दो।" ब्राह्मणने कहा—"भाई, तुम लोगों-को धन देनेमें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु कठिनता यह है कि जिस योगमें रत्न-वर्षा होती है, वह योग अब एक वर्ष बाद आवेगा। यदि तुम लोग तब तक ठहर सको, तो मैं तुम लोगोंके लिये भी रत्नोंकी वर्षा करा दूँगा।"

यह सुनते ही सब दस्यु बहुत क्रुद्ध होकर बोले—"तुम बड़े

धूर्त हो। तुमने अभी इन प्रेषणकोंको धन दिया है और हम लोगोंसे वर्ष भर तक ठहरनेके लिये कहते हो।" इसके उपरान्त उन्होंने एक तेज तलवारसे ब्राह्मणके शरीरके दो खण्ड कर दिए और उसे वहीं मार्गमें फेंककर वे उन प्रेषणकोंको ढूँढने निकले। उनके मिल जाने पर दोनों दलोंमें युद्ध हुआ, जिसमें दूसरे दलकी विजय हुई। उसने प्रेषणकोंको मार डाला और उनका सारा धन ले लिया। पर शीघ्र ही उस दल के सब दस्यु आपसमें ही दो दलोंमें विभक्त होकर लड़ने लगे, जिसके कारण उनमेंसे आधे मर गए। जो आधे बच रहे थे, वे फिर दो दलोंमें विभक्त होकर आपसमें लड़ने लगे। इस प्रकार आपसमें मार काट करते करते उनमेंसे केवल दो आदमी बच रहे। एक हजार दस्युओंमेंसे अब केवल दो दस्यु बच रहे थे, शेष सब मर कट गए थे। जो दो दस्यु बच रहे थे, वे सारा धन लेकर पासके एक जंगलमें जा छिपे। उनमेंसे एक तो तलवार लेकर उन रत्नोंकी रक्षा करने लगा और दूसरा भोजन लानेके लिये गाँवकी ओर चला गया।

लोभ ही विनाशका मूल होता है। जो मनुष्य रत्नोंकी रक्षाके लिये पहरा दे रहा था, उसने सोचा कि जब मेरा साथी लौट आवेगा, तब वह इस धनमेंसे आधा ले लेगा। इससे अच्छा यही है कि जब वह आवे, तब मैं उसे इसी तलवारसे मार डालूँ। यह सोचकर वह तलवार हाथमें लिए अपने साथीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उधर जो व्यक्ति भोजन लानेके लिये गया था, उसने सोचा कि इसमेंसे आधा धन तो मेरा साथी ही ले लेगा। पर यदि मैं भोजनमें विष मिला दूँ, तो उसे खाकर वह मर जायगा और वह सारा धन मुझे ही मिल जायगा। यह

सोचकर उसने स्वयं तो वहीं भोजन कर लिया और शेष अंशमें विष मिलाकर वह अपने साथीके पास पहुँचा। ज्यों ही वह झुक-कर अन्नका पात्र नीचे रखने लगा, त्यों ही दूसरे दस्युने तलवार-का ऐसा हाथ मारा कि वह दो टुकड़े हो गया और उसके शवको किसी एकान्त स्थानमें छिपा दिया। इसके उपरान्त उसने वही विष मिला भोजन किया, जिससे थोड़ी ही देरमें वह आप भी मर गया। इस प्रकार धनके लिये उस ब्राह्मणकी ही नहीं, एक हजार दस्युओंकी भी हत्या हुई!

जब दो चार दिनके उपरान्त निष्क्रय एकत्र करके बोधि-सत्व लौटे, तब उन्होंने देखा कि आचार्य वहाँ नहीं हैं और चारों ओर रत्न बिखरे पड़े हैं। इससे उन्हें आशंका हुई कि कदाचित् आचार्यने मेरी बात नहीं मानी और रत्नोंकी वर्षा कराई है, जिससे सब लोगोंका नाश हो गया है। राजपथसे चलते चलते एक स्थान पर उन्होंने आचार्यका दो खण्डोंमें कटा हुआ शव देखा। वे यह कह कहकर विलाप करने लगे कि हाय, आचार्यने मेरी बात नहीं मानी। इसके उपरान्त उन्होंने लकड़ियाँ चुनकर चिता तैयार की और आचार्यकी अग्नि-क्रिया सम्पन्न करके जंगली फूलोंसे प्रेतपूजा की। अब वे वहाँसे आगे बढ़े। मार्गमें क्रम क्रमसे उन्हें पाँच सौ प्रेषणकोंके शव, फिर ढाई सौ दूसरे दस्युओंके शव इत्यादि मिलते गए। अन्तमें वे उस स्थानके पास पहुँचे, जहाँ अन्तिम दोनों दस्युओंके प्राण गए थे। वे सब शव गिनते गए थे, इससे उन्हें पता चल गया था कि अभी दो दस्यु और बाकी हैं। उन्होंने सोचा कि एक हजार आदमियोंमेंसे दोको छोड़कर और सब मारे गए।

पर उनमें भी परस्पर अवश्य विवाद हुआ होगा। देखना चाहिए कि वे दोनों कहाँ गए। यह सोचते हुए वे कुछ ही दूर गए थे कि उन्होंने देखा कि राजपथसे एक और छोटा मार्ग निकलकर गाँवके पासवाले जंगलकी ओर गया है। उस मार्गमें कुछ दूर चलने पर पहले तो रत्नके ढेर मिले और तब थोड़ी ही दूर पर एक दस्युका मृत शरीर मिला। उस शवको देखते ही बोधिसत्वने सारा वृत्तान्त जान लिया और अब वे दूसरे दस्युका अनुसन्धान करने लगे। पास ही एकान्तमें उन्हें दो टुकड़ोंमें कटा हुआ दूसरा शव भी मिल गया। उन्होंने सोचा कि मेरी बात न माननेके कारण आचार्यने अपने प्राण तो गँवाए ही, एक हजार दस्युओंके भी प्राण लिए हैं। जो लोग बुरे मार्गका अवलम्बन करके स्वयं सुखी होना चाहते हैं, वे इसी प्रकार अपना और दूसरोंका सर्वनाश करते हैं। इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"जो लोग अनुचित मार्गका अवलम्बन करके इष्टसाधन करना चाहते हैं, उनका सदा सर्वनाश ही होता है। चेतियके दस्युओंने वेदब्भको मारा, पर अन्तमें वे स्वयं भी विनष्ट हो गए।"

इसके उपरान्त बोधिसत्व कहने लगे—"जिस प्रकार आचार्यने अपना पराक्रम दिखलानेके लिये रत्नोंकी वर्षा कराई और अपने प्राण गँवाकर साथ ही और भी बहुत से लोगोंके प्राण लिए, उसी प्रकार और लोग भी स्वार्थ-सिद्धिके लिये अनुचित उपाय करके अपना और अपने साथ दूसरोंका सर्वनाश करते हैं।" बोधिसत्वकी यह बात सारे जंगलमें गूँज उठी।

उक्त गाथाके द्वारा जब उन्होंने धर्मकी व्याख्या की थी, उस समय वनदेवताओंने उन्हें साधुवाद दिया था।

अन्तमें बोधिसत्व सब रत्न आदि उठाकर अपने घर ले गए और दान पुण्य आदि करके अपना जीवन बिताते हुए उन्होंने यथा समय स्वर्गके लिये प्रस्थान किया।

दुर्मेधा जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने राज-महिषीके गर्भमें जन्म लिया था। नामकरणके दिन उनका नाम ब्रह्मदत्तकुमार रखा गया था। उन्होंने सोलह वर्षकी अवस्थामें ही तक्षशिला नगरीमें विद्याभ्यास करके तीनों वेदों और अठारह कलाओंका बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उस समय ब्रह्मदत्तने उन्हें उपराजके पद पर नियुक्त कर दिया था।

उन दिनों वाराणसीके निवासी पर्व आदिके दिन देवी-देवताओंकी पूजा किया करते थे। उस पूजामें सैकड़ों हजारों बकरियों, भेड़ों, मुर्गों और सूअरों आदिका वध होता था और इन मारे हुए पशुओंके रक्त-मांस तथा फल-फूल आदिके साथ देवताओंकी अर्चना हुआ करती थी। ये सब बातें देखकर बोधिसत्व सोचने लगे कि लोग देवार्चनमें बहुत से प्राणियोंकी हत्या करते हैं और इस प्रकार अधिकांश लोग अधर्म पथ पर चलते हैं। पिताकी मृत्युके उपरांत जब मुझे राजपद मिलेगा, तब मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे यह निष्ठुर प्रथा भी उठ जाय और लोगोंको अपनी कोई हानि भी न जान पड़े। मनमें इस प्रकारका संकल्प करके राजकुमार एक रथ पर चढ़कर नगरसे बाहर निकले। मार्गमें उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़े वट वृक्षके पास बहुत से लोग एकत्र हैं। लोगोंका विश्वास था कि इस वट वृक्षमें किसी देवताका आविर्भाव हुआ है; इसी लिये वे वहाँ जाकर पुत्र, कन्या, यश, धन आदि अनेक बातोंके लिये कामनाएँ किया

करते थे। बोधिसत्त्व रथ परसे उतरकर उस वृक्षके पास पहुँचे, गन्ध पुष्प आदिके द्वारा उन्होंने उसकी पूजा की, उसके मूलमें थोड़ा जल डाला और प्रदक्षिणा तथा प्रणिपात करके वे रथ पर बैठकर नगरको लौट आए। तबसे वे बराबर बीच बीचमें उस वृक्षके पास जाया करते थे और सच्चे देवभक्तकी भाँति इसी प्रकार उसकी पूजा किया करते थे।

समय पाकर उनके पिताकी मृत्यु हो गई और वे सिंहासन पर बैठे। वे राजधर्मका पालन करते हुए शास्त्रके अनुसार राज्य का संचालन और प्रजाका पालन करने लगे। एक दिन उन्होंने सोचा कि मेरी एक अभिलाषा तो पूरी हो गई, मुझे राजपद मिल गया: अब मेरी दूसरी अभिलाषा भी पूरी होनी चाहिए। उन्होंने अपने अमात्यों तथा विद्वान् और साधारण गृहस्थ ब्राह्मणों आदि-को एकत्र करके उनसे पूछा—"क्या आप लोग जानते हैं कि मैंने किस प्रकार राजपद प्राप्त किया है?" उन लोगोंने कहा—"जी नहीं महाराज, हम लोग तो नहीं जानते।" राजाने कहा—"क्या आप लोग जानते हैं कि मैं अमुक वट वृक्षकी केवल गन्ध और पुष्पके द्वारा पूजा किया करता था और केवल हाथ जोड़कर प्रणाम किया करता था?" लोगोंने कहा—"हाँ महाराज, यह तो हम लोग प्रायः देखा करते थे।" राजाने कहा—"उस समय मैं प्रार्थना करता था कि जब कभी मैं राजपद पाऊँगा, तब वृक्ष-देवताकी पूजा करूँगा। उन्हीं देवताकी कृपासे अब मैं राजा हुआ हूँ। अतः अब मैं उनकी पूजा करना चाहता हूँ। आप लोग, जहाँ तक शीघ्र हो सके, पूजाका आयोजन करें।" लोगोंने पूछा—"महाराज, पूजाके लिये

क्या आयोजन करना होगा ?" राजाने कहा—"मैंने उस समय निश्चय किया था कि मेरे राज्यमें जो लोग जीवहिंसा आदि दुष्कर्म करते हैं, झूठ बोलते हैं, या इसी प्रकारके और और पाप करते हैं, उन्हींके मांस और रक्त आदिसे मैं देवताकी पूजा करूँगा। अब आप लोग भेरी बजवाकर यह घोषणा करा दीजिए कि हमारे राजा जिस समय उपराज थे, उस समय उन्होंने देवताके सामने निश्चय किया था कि राजपद प्राप्त करने पर मैं राज्यके समस्त दुःशील मनुष्योंकी बलि दूँगा। अब वे चाहते हैं कि प्राणिहिंसा आदि पाप करनेवाले एक हजार दुःशील पुरुषोंके मांस और रक्त आदिसे पूजन करके देवताको तृप्त किया जाय। अतः नगर-निवासियोंको सूचित किया जाता है कि आजसे आगे जो लोग इस प्रकारके पापाचारमें प्रवृत्त होंगे, उनमेंसे एक हजार मनुष्योंकी बलि देकर राजा देवऋणसे मुक्त होंगे।" इसके उपरान्त अपने उद्देशको और भी स्पष्ट करनेके लिये बोधिसत्वने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"जिस समय मैं उपराज था, उस समय मैंने भक्ति भावसे देवताके सामने मन्नत मानी थी कि यदि मुझे राजपद मिलेगा, तो मैं एक हजार पाखण्डियोंकी बलि चढ़ाऊँगा। अब मेरी वह कामना पूर्ण हो गई है और मैं सोचता हूँ कि एक हजार पाखण्डी मुझे कहाँ मिलेंगे। पर मैं देखता हूँ कि अभी तक संसारमें अगणित पाखण्डी हैं। इससे आशा होती है कि मैं शीघ्र ही देवऋणसे मुक्त हो जाऊँगा।"

अमात्य आदि "जो आज्ञा" कहकर वहाँसे चले गए और उन्होंने सारी वाराणसी नगरीमें इसी आशयकी घोषणा

भेरी बजवाकर कर दी। वह घोषणा सुनते ही सब लोगोंने दुःशील कर्मोंका परित्याग कर दिया। जब तक बोधिसत्व राजा थे, तब तक उनकी प्रजामेंसे कोई दुःशीलताके अपराधका अपराधी नहीं देखा गया। इस प्रकार बोधिसत्वने बिना किसीको कोई दण्ड दिए ही अपनी सारी प्रजाको शीलवान् बना दिया। वे स्वयं भी आजन्म दान-पुण्य आदि शुभ कर्म किया करते थे और देहान्तके उपरान्त देवनगरमें गए थे।

महाशील जातक

प्राचीन कालमें बाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने राजमहिषीके गर्भमें जन्म लिया था। नामकरणके समय उनका नाम शीलवान् कुमार रखा था। सोलह वर्षकी अवस्थामें वे सब विद्याओंके पण्डित हो गए थे और पिताकी मृत्युके उपरान्त राजपद पर प्रतिष्ठित होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे थे। उस समय वे महाशीलवान् राजाके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने नगरके चारों द्वारों पर चार, नगरके मध्यमें एक और राजप्रासादके पास एक दानशाला स्थापित की थी, जिसमें अनाथों और दरिद्रोंको अन्न आदि वितरित किया जाता था। वे शीलपरायण और दया, क्षान्ति आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, उपोसथ आदि व्रतोंका पालन करते थे और अपत्य भावसे समस्त भूतोंका परितोष किया करते थे।

राजा महाशीलवान्का एक अमात्य अन्तःपुरकी एक स्त्रीके साथ अनुचित संबंध रखता था। जब यह भेद सब लोगों पर प्रकट हो गया, तब होते होते राजाके कानों तक भी यह बात पहुँची। अनुसंधान करने पर राजाको विदित हुआ कि अमात्य निस्संदेह अपराधी है। उन्होंने उसे बुलाकर कहा—"मूढ़, तूने बहुत ही गर्हित कार्य किया है। अतः अब मुझे इस राज्यमें रहने देना ठीक नहीं। तू अपनी धनसम्पत्ति और परिवारके लोगोंको लेकर और कहीं चला जा।"

काशीसे इस प्रकार निर्वासित होने पर वह अमात्य कोशल

राज्यमें चला गया और कुछ समयमें वहाँके राजाका परम विश्वासभाजन बन गया। एक दिन उसने कोशलके राजासे कहा—"महाराज, काशीका राज्य ऐसे मधुचक्रके समान है जिसमें मधुमक्खियाँ नहीं हैं। वहाँके राजाकी प्रकृति बहुत ही कोमल है। बहुत ही सामान्य सेनाकी सहायतासे भी उस राज्य पर सहजमें अधिकार किया जा सकता है।" उसकी यह बात सुनकर कोशल-के राजाने सोचा कि काशी एक बहुत ही विस्तृत राज्य है। पर यह कहता है कि बहुत ही थोड़ी सेनाकी सहायतासे उसपर अधिकार किया जा सकता है। यह कोई गुप्तचर तो नहीं है। यह सोचकर उन्होंने उस निर्वासित अमात्यसे कहा—"जान पड़ता है कि तुम काशीके राजाके गुप्तचर हो।" उसने उत्तर दिया—"महाराज, मैं गुप्तचर नहीं हूँ। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह नितान्त सत्य है। यदि आप मेरी बातोंका विश्वास न करें, तो परीक्षाके लिये काशीके किसी प्रत्यन्त ग्रामके निवासियोंकी हत्याके लिये ही थोड़े से आदमी भेज देखें। वे सब लोग पकड़े जाकर काशीके राजाके समीप उपस्थित किए जायँगे। उन्हें दण्ड देना तो दूर रहा, उलटे वह उनको धन-सम्पत्ति देकर बिदा करेगा।"

कोशलके राजाने देखा कि यह व्यक्ति बहुत ही दृढ़तापूर्वक बातें कर रहा है। उसने उसके परामर्शके अनुसार कार्य करनेका संकल्प किया और कुछ लोगोंको भेजकर काशी राज्यके एक प्रत्यन्त ग्राम पर आक्रमण करा दिया। जब वे उपद्रवी पकड़े जाकर काशीराजके समक्ष उपस्थित किए गए, तब राजाने उनसे पूछा—"क्यों भाइयो, तुम लोगोंने ग्रामवासियोंकी हत्या क्यों की?" उन लोगोंने उत्तर दिया—"देव, हम लोगोंकी जीवि-

काके निर्वाहका और कोई उपाय नहीं है।" राजाने कहा—"यदि यही बात है, तो तुम लोग पहले हमारे ही पास सीधे क्यों नहीं चले ।आए ? अच्छा, अब यह धन लेकर अपने घर चले जाओ। अब आगेसे ऐसा काम कभी मत करना।" उन लोगोंने कोशल जाकर अपने राजासे यह सब वृत्तान्त कह सुनाया। परंतु इस प्रकारका प्रमाण पाकर भी कोशलके राजाको काशी पर आक्रमण करनेका साहस न हुआ। उसने काशी राज्यके मध्यके किसी गाँव पर अत्याचार करनेके लिये फिर कुछ आदमी भेजे। जब वे लोग पकड़े जाकर काशीके राजाके सामने उपस्थित किए गए, तब उन लोगोंके साथ भी वही सदय व्यवहार हुआ। परंतु इतने पर भी कोशलके राजाका संदेह बना रहा और उसने कुछ लोगोंको वाराणसी नगरीके राजमार्गों पर लूट पाट करनेके लिये भेजा। पर जब वे लोग पकड़े गए, तब उन्हें भी दंडके बदलेमें पुरस्कार ही मिला। उस समय कोशलके राजाको निश्चय हो गया कि काशीके राजा परम निरीह और धर्मपरायण हैं। उसने अपनी पूरी सेना साथ लेकर काशी पर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान किया।

उस समय काशीके राजाके पास एक हजार महायोद्धा थे। उनमेंसे प्रत्येक असाधारण वीर्यवान् था। वे लोग मतवाले हाथीके सामने भी पीठ नहीं दिखलाते थे, सिर पर वज्रपात होने पर भी विचलित नहीं होते थे। यदि उनको शीलवान् महाराजकी आज्ञा मिलती, तो वे जम्बू द्वीपके समस्त राज्यों पर विजय प्राप्त कर सकते थे। जब उन वीर पुरुषोंने सुना कि कोशलका राजा काशी राज्य पर आक्रमण करनेके लिये आ रहा है, तब

उन्होंने महाराज शीलवान्‌के पास जाकर प्रार्थना की—"महा-राज, आप हम लोगोंको आज्ञा दीजिए, तो हम लोग सीमा पर चले जायँ; और ज्यों ही कोशलका राजा आपकी सीमामें पैर रखे, त्यों ही हम लोग उसे पकड़कर आपके समीप ले आवें।" पर उन्होंने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—"भाइयो, मैं यह नहीं चाहता कि मेरे लिये किसी दूसरेको कष्ट हो या किसीका कोई अनिष्ट हो। जिसे राज्यका लोभ हो, वह यदि चाहे तो हमारे राज्य पर अधिकार कर सकता है।" उधर कोशलके राजाने काशी राज्यकी सीमा पार करके जनपदमें प्रवेश किया। उस समय काशीके राजाके अमात्योंने उनके पास जाकर युद्ध आरंभ करनेकी आज्ञा माँगी। पर राजाने उनको भी लड़नेसे रोक दिया। इसके उपरान्त कोशलके राजाने राजधानीके पास पहुँच कर अपने दूतके द्वारा काशीके राजासे कहलाया—"या तो युद्ध करो और नहीं तो राज्य छोड़ दो।" काशीराजने उत्तर दिया—"मैं युद्ध नहीं करूँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम राज्य ले लो।" अमात्योंने उस समय भी उनसे कहा—"महा-राज, यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग कोशलके राजाको राज-धानीमें प्रवेश न करने दें। राजधानीके बाहर जाकर उससे युद्ध करें और वहींसे उसको वन्दी करके आपके सम्मुख ले आवें।" परंतु महाराज महाशीलवान् इसपर भी सम्मत न हुए। उन्होंने नगरके द्वार खुलवा दिए और आप अपने एक हजार अमा-त्योंको लेकर सिंहासन पर बैठ गए।

कोशलके राजाने अपनी विशाल सेनाके साथ नगरमें प्रवेश किया। किसीने उसके आगे बढ़नेमें कोई अड़चन नहीं

डाली। उसने राजभवनमें पहुँचकर सभामण्डपमें प्रवेश किया और निरपराध काशीराज तथा उनके एक हजार अमात्यों-को कैद करके आज्ञा दी—"इन लोगोंकी मुश्कें बाँध दो और आमक श्मशानमें * गड्ढे खोदकर इन सबको गले तक जमीनमें गाड़ दो; और तब ऊपरसे गड्ढेके चारों ओरकी मिट्टी इस प्रकार पीट दो जिसमें ये हाथ तक न हिला सकें। रातके समय इन लोगोंको गीदड़ और कुत्ते आदि नोच नोचकर खा जायँगे।" कोशलराजके सेवकोंने अपने निष्ठुर राजाकी आज्ञा शिरोधार्य की और काशीराज तथा उनके अमात्योंको मुश्कें बाँधकर वहाँसे ले गए।

इतना अत्याचार सहने पर भी काशीराजके मनमें चोर-राजके† प्रति किसी प्रकारके क्रोधका उद्रेक नहीं हुआ। उनके पार्श्ववर्ती आदि भी इतने विनीत थे कि मुश्कें कसी जाने पर उनमेंसे किसीने भी अपने प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध चूँ तक न की। चोरराजके सेवक उन लोगोंको श्मशानमें ले गए। वहाँ गड्ढे खोदकर बीचमें राजाको और उनके दोनों ओर अमात्योंको गले गले तक गाड़ दिया गया और उनके चारों ओरकी मिट्टी अच्छी तरह पीट दी गई जिससे वे लोग हाथ तक हिलानेमें असमर्थ हो गए। इस अवस्थामें भी शीलवान्

---

* आमक श्मशान = वह श्मशान जहाँ मुरदे जलाए नहीं जाते, बल्कि गीदड़ों और कुत्तोंके खानेके लिये योंही फेंक दिए जाते हैं।

† चोरराज = वह राजा जिसने दूसरे राज्य पर अनुचित रूपसे आक्रमण करके अधिकार कर लिया हो।

राजाके मनमें चोरराजके प्रति किसी प्रकारका क्रोध न उत्पन्न हुआ। जब चोरराजके सेवक चले गए, तब काशीराजने अपने अमात्योंको सम्बोधन करके कहा—"हृदयमें मैत्रीका भाव रक्खो; और किसी भावको स्थान न दो।"

रातके समय मनुष्योंका मांस खानेके लिये गीदड़ वहाँ आ पहुँचे। उनको देखकर राजा और उनके अमात्य इतने जोरसे चिल्लाए कि वे सब डरके मारे भाग गए। पर जब उन गीदड़ोंने कुछ दूर जाकर पीछे मुड़कर देखा कि कोई हमारे पीछे नहीं आ रहा है, तब वे फिर लौट आए। राजा और उनके मन्त्री इस बार भी पहलेकी भाँति चिल्लाए। उनकी चिल्लाहट सुनकर गीदड़ फिर भागे, पर थोड़ी ही देर बाद फिर पहलेकी भाँति लौट आए। इस प्रकार तीन बार भागने पर भी जब गीदड़ोंने देखा कि कोई हमारा पीछा नहीं कर रहा है, तब उनका साहस बढ़ा और उन्होंने समझ लिया कि इन सब लोगोंको प्राण-दण्डकी आज्ञा मिल चुकी है, ये सब हमारे भक्ष्य हैं, इसलिये चौथी बार वे नहीं भागे। झुण्डका प्रधान गीदड़ राजाको और शेष गीदड़ अमात्योंको खाने के लिये आगे बढ़े।

चतुर काशीराजने गीदड़को आगे बढ़ते देखकर अपनी गरदन और आगे कर दी। गीदड़ सोचने लगा कि यह तो और भी अच्छा हुआ। पर जब वह उनको काटनेके लिये आगे बढ़ा, तब उन्होंने दाँतोंसे उसीकी गरदन पकड़ ली। उनके जबड़ोंमें यंत्रके समान और शरीरमें हाथीके समान बल था; इसलिये गीदड़ उनकी पकड़से किसी प्रकार छूट न

सका और जोर जोरसे चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट सुनकर दूसरे गीदड़ोंने समझा कि हमारा सरदार पकड़ा गया है; इसलिये वे सब अमात्योंको छोड़कर प्राण लेकर भागे।

राजाने जिस गीदड़को दाँतोंसे पकड़ रखा था, उसने अपने आपको छुड़ानेके प्रयत्नमें इधर उधर उछल कूदकर राजाके आस पासकी बहुत सी मिट्टी खोदकर पोली कर दी। जब राजाने देखा कि चारों ओरकी मिट्टी पोली हो गई है, तब उन्होंने गीदड़को छोड़ दिया और हाथीके समान इधर उधर हिलकर अपने दोनों हाथ गड्ढेसे बाहर निकाले। इसके उपरान्त उन्होंने गड्ढेसे निकलकर अपने अमात्योंका उद्धार किया।

उस श्मशानमें जो यक्ष रहा करते थे, उनमेंसे प्रत्येकके लिये भूमिका एक एक अंश निर्धारित था। जिस दिनकी यह बात है, उस दिन कुछ लोग दो यक्षोंकी सीमा पर एक शव फेंक गए थे। जब दोनों यक्ष उस शवका विभाग न कर सके, तब उन्होंने सोचा कि चलो, इस शीलवान् राजाके पास चलें। यह परम धार्मिक है; शवका ठीक ठीक विभाग कर देगा। यह सोचकर वे दोनों यक्ष उस शवका पैर पकड़कर उसे घसीटते हुए राजाके पास ले आए और उनसे उसके दो सम विभाग कर देनेके लिये अनुरोध करने लगे। राजाने कहा—"मैं विभाग तो कर दूँगा, परन्तु अभी मैं अशुचि अवस्थामें हूँ। तुम लोग पहले मुझे स्नान कराओ।" चोर-राजके स्नानके लिये जो सुवासित जल रखा हुआ था, यक्षोंने वही जल लाकर राजाको स्नान कराया और चोरराजके लिये जो कपड़े रक्खे थे, वही कपड़े लाकर उनको पहना दिए। अनेक

प्रकारके सुगन्धित द्रव्य लाकर उन्होंने राजाके शरीर पर लेप किया, पुष्पों आदिसे उन्हें भली भाँति सजाया और तब कहा—"महाराज, और कुछ आज्ञा दीजिए।" राजाने कहा—"मुझे भूख लगी है।" चोरराजके लिये जो अच्छे अच्छे भोजन बनाकर रखे हुए थे, यक्ष वही भोजन उठाकर ले आए। राजाने आनन्दपूर्वक उत्कृष्ट भोजन किया। चोरराजके पीनेके लिये सोनेकी झारीमें जो सुगन्धित जल रखा हुआ था, झारी समेत वह जल भी वहाँ आ गया था। काशीराजने जल पीकर कुल्ला किया, हाथ धोए और चोरराजके लिये बने हुए सुगन्धित पान खाए। यक्षोंने कहा—"महाराज, और कुछ आज्ञा कीजिए।" काशीराजने कहा—"कोशलराजके तकियेके नीचे मेरा मंगल खड्ग रक्खा है, वह उठा लाओ।" वे यक्ष क्षण भरमें वह खड्ग भी उठा लाए।

राजाने खड्ग हाथमें लेकर शवको खड़ा कराया और उसके मस्तक पर आघात करके उसे ऊपरसे नीचे तक दो समान भागोंमें चीर दिया और एक एक भाग उन दोनोंको देकर अपना खड्ग धोकर कोपमें,रख लिया। दोनों यक्ष मनुष्यका मांस खाकर बहुत तृप्त हुए और बोले—"महाराज, अब और बतलाइए, क्या आज्ञा है।" राजाने कहा—"मुझे तुम ले चलकर चोरराजके शयनागारमें पहुँचा दो; और इन अमात्योंको इनके घर पहुँचा आओ।" उन्होंने सिर झुकाकर राजाकी इस आज्ञाका भी तुरन्त पालन कर दिया।

कोशलका राजा विचित्र शयनागारमें विचित्र शय्या पर सो रहा था। काशीराजाने अपने खड्गकी मूठसे उसके पेट

पर आघात किया। वह डरकर जाग उठा। दीपकके प्रकाशमें उसने देखा कि पास ही राजा शीलवान् खड़े हैं। उन्हें पहचानकर वह साहस करके खड़ा हुआ और पूछने लगा—"महाराज, इतनी रातके समय, चारों ओर पहरेदारोंके रहते हुए, इन बन्द द्वारोंसे होकर कोई मनुष्य मेरे शयनागारमें प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसी दशामें आप किस प्रकार मेरे ये सब वस्त्र पहनकर और अपना खड्ग हाथमें लेकर यहाँ तक आ पहुँचे?" काशीराजने आदिसे अन्त तक सविस्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उनकी बातें सुनकर कोशलराजको बहुत अनुताप हुआ। उन्होंने कहा—"रक्त मांस खानेवाले भीषण और निष्ठुर राक्षस तक आपका माहात्म्य जानते हैं; और मैं मनुष्य होकर भी आपका माहात्म्य न जान सका। आजसे मैं कभी आपके समान शीलसम्पन्न व्यक्तिके साथ इस प्रकारका व्यवहार न करूँगा।" इसके उपरान्त उसने खड्ग छूकर शपथ की, काशीराजसे क्षमा माँगी, उन्हें उनकी शय्या पर सुलाया और आप एक साधारण शय्या पर सो रहा।

रात बीत गई और प्रभातका समय हुआ। कोशलराजने भेरी बजवाकर अपने समस्त सैनिकों, अमात्यों, ब्राह्मणों और गृहपतियोंको एकत्र करके उन सबके सामने शीलवान् राजाका गुणगान किया और उस सभामें फिर उनसे क्षमा माँगी और उनका राज्य उन्हें देकर कहा—"महाराज, आजसे आपके राज्यके विद्रोहियोंके दमनका भार मैंने अपने ऊपर लिया। आजसे मैं आपके राज्यकी रक्षा करूँगा और आप केवल प्रजापालन किया कीजिएगा।" इसके उपरान्त उसने उस

विश्वासघातक अमात्यको दण्ड दिया और आप अपनी सेना तथा सामन्तोंको साथ लेकर अपने राज्यको चला गया।

राजा शीलवान् अपने सोनेके सिंहासन पर बैठे। उनके मस्तक पर श्वेत छत्र रखा गया। अपनी महिमाका स्मरण करके वे सोचने लगे—"यदि मैं निरुत्साह हो जाता, तो यह ऐश्वर्य न प्राप्त कर सकता और न मेरी अथवा मेरे अमात्योंकी ही जान बचती। केवल उत्साहके बलसे ही मुझे फिरसे राज-पद मिला है। सब लोगोंको सदा आशा रखकर उत्साहशील होना चाहिए।" इसके उपरान्त उन्होंने हृदयके आवेगमें नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"कभी आशा मत छोड़ो और निरन्तर चेष्टा करते चलो। अदम्य वीर्यके बलसे सारी कामनाएँ पूरी होंगी। देखो, इसी उत्साहके बलसे मैंने समस्त दुःख दूर करके अपनी सारी इच्छाएँ पूरी कर ली हैं।"

इस प्रकार उत्साहका महत्व बतलाते हुए काशीराजने कहा—"शीलका पालन कभी व्यर्थ नहीं जाता।" इसके उपरान्त बोधिसत्व जब तक जीवित रहे, तबतक पुण्य कृत्य करते रहे और मरने पर अपने कर्मोंके अनुसार फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए।

फल जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक श्रेष्ठि-कुलमें जन्म लिया था। वयस्क होने पर वे पाँच सौ बैल-गाड़ियों पर माल लादकर इधर उधर वाणिज्य करनेके लिये जाया करते थे। एक दिन वे किसी बहुत बड़े जंगलके पास पहुँचे। गन्तव्य स्थान तक पहुँचनेके लिये उनको उसी जंगलमेंसे जाना पड़ता था; इसलिये उन्होंने अपने अनुचरोंको बुलाकर कहा—"सुनते हैं कि इस वनमें विप-वृक्ष हैं। इसलिये तुम लोग सावधान रहना और बिना मुझसे पूछे कोई ऐसा फल, मूल या पत्र आदि न खाना जो तुमने पहले देखा न हो या जिसे तुम पहलेसे जानते न हो।" सब लोगोंने उनकी यह बात स्वीकृत कर ली। इसके उपरान्त सब लोगोंने वनमें प्रवेश किया।

उस वनकी सीमाके पास ही एक गाँव था और उस गाँवके बाहर एक किम्फल * वृक्ष था। काण्ड, शाखा, पत्र, पुष्प और फल सभी बातोंमें वह किम्फल वृक्ष आमके वृक्षके समान था। केवल देखनेमें ही नहीं, बल्कि स्वाद और गंध आदिमें भी उसके कच्चे और पके फल बिलकुल आमके फलोंके ही समान थे। पर पेटमें पहुँचते ही वे फल हलाहलके समान अपना प्रभाव दिखलाते थे और खानेवालेका प्राणान्त कर देते थे।

बोधिसत्वके कई पेटू अनुचर दलके आगे आगे चल रहे

* अज्ञात या बिना जाना हुआ फल या उसका वृक्ष।

थे। उनमेंसे कुछने किम्फलको आम समझकर खा लिया। पर बहुतोंने यही सोचा कि बिना बोधिसत्वसे पूछे यहाँ कुछ खाना उचित नहीं। इसलिये वे फल हाथमें लेकर बैठे रहे। जब बोधिसत्व आए, तब उन्होंने पूछा—"आर्य, क्या हम लोग यह फल खा सकते हैं?" बोधिसत्वने कहा—"यह आम नहीं है, नहीं खाना चाहिए।" इसके पहले जिन लोगोंने वह फल खाया था, उनको बोधिसत्वने वमन कराया और चतुर्मधुर खिलाया। इस प्रकार वे लोग आरोग्य हुए।

इसके पहले अनेक सार्थवाहोंने उस वृक्षके नीचे बैठकर उसका फल खाया था और वे लोग मृत्यु मुखमें पड़ चुके थे। दूसरे दिन गाँववाले वहाँ जाकर उन लोगोंके मृत शरीर देखा करते थे, उन शरीरोंको पैर पकड़कर घसीटते हुए किसी एकान्त स्थनामें फेंक दिया करते थे और उनकी बैल-गाड़ियाँ तथा उनपर लदा हुआ माल लेकर चल दिया करते थे।

उस दिन भी वे लोग प्रभात होने पर माल लूटनेके विचारसे उस वृक्षके पास आ पहुँचे। मार्गमें उनमेंसे कोई कहता था कि मैं बैल लूँगा; कोई कहता कि मैं गाड़ियाँ लूँगा; और कोई कहता था कि मैं माल लूँगा। पर जब वृक्षके पास पहुँचकर उन लोगोंने देखा कि एक आदमी भी नहीं मरा, तब वे निराश होकर पूछने लगे—"यह तुम लोगोंने किस तरह जाना कि यह आमका वृक्ष नहीं है?" बोधिसत्वके सेवक कहने लगे—"हम लोगोंने तो नहीं जाना, पर सार्थवाहने जान लिया था।" इसपर गाँववालोंने बोधिसत्वके पास जाकर पूछा—"पंडितवर, आपने यह किस प्रकार निश्चय किया कि यह आमका फल नहीं है?"

बोधिसत्वने उत्तर दिया—"मैंने दो कारणोंसे यह जाना कि यह आमका फल नहीं है। एक तो यह कि यह गाँवके बाहर था; और दूसरे यह कि इस पर चढ़ना कोई कठिन नहीं था और इतना होनेपर भी यह फलोंके बोझसे झुका पड़ता था (जिससे सिद्ध होता था कि इनके फल कोई खाता नहीं)। इसलिये मैंने समझ लिया कि यह सुफल नहीं है और इसके खानेसे अवश्य ही मृत्यु होगी।"

इसके उपरांत उपस्थित लोगोंको धर्मोपदेश देकर बोधिसत्व अपने उद्दिष्ट स्थानकी ओर चले गए।

पंचायुध जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने महिषीके गर्भमें जन्म लिया था। उनके नामकरणके दिन उनके माता-पिताने आठ सौ दैवज्ञ ब्राह्मणोंको यथेष्ट भेंट देकर पूछा कि इस बालकका भाग्य कैसा होगा। दैवज्ञोंने बोधिसत्वको सुलक्षण सम्पन्न देखकर उत्तर दिया—"महाराज, यह कुमार आपकी मृत्युके उपरांत राजपद प्राप्त करेगा और सर्वगुण सम्पन्न तथा प्रबल प्रतापी होगा। पंचविध आयुधों*के प्रभावसे इसका यश सारे देशमें फैलेगा। सारे जम्बू द्वीपमें इसकी समता करनेवाला कोई न होगा। यह भविष्यद्वाणी सुनकर उनके माता-पिताने उनका नाम पंचायुध कुमार रखा।

जब बोधिसत्व सोलह वर्षके हुए और उनको हिताहित समझनेका विवेक हुआ, तब एक दिन ब्रह्मदत्तने उनको बुलाकर कहा—"बेटा अब तुम कुछ विद्या प्राप्त करो।" बोधिसत्वने पूछा—"पिता जी, मैं किससे विद्या प्राप्त करूँ?" राजाने कहा—"गान्धार राज्यकी तक्षशिला नगरीमें एक देशविख्यात आचार्य रहते हैं। तुम उन्हींके पास जाकर विद्या पढ़ो और उनको एक सहस्र मुद्रा दक्षिणा दो।"

तक्षशिला जाकर बोधिसत्व विद्या पढ़ने लगे। अध्ययन समाप्त करनेके उपरान्त जब वे वाराणसी लौटने लगे, तब आचार्यने उनको पंचविध आयुध दिए। बोधिसत्व ने वे आयुध

---

* खड्ग, शक्ति, धनुष, परशु और चर्म।

लेकर आचार्यको प्रणाम किया और वाराणसीके लिये यात्रा की। मार्गमें एक वन पड़ता था जिसमें श्लेषलोम नामक एक यक्ष रहा करता था। जब बोधिसत्व उस वनके पास पहुँचे, तब जिन जिन लोगोंने उनको देखा, उन उन लोगोंने उनको आगे बढ़नेसे रोका और कहा—"महाराज, आप इस वनमें प्रवेश न करें। इसमें श्लेषलोम नामक एक यक्ष रहता है। वह जिसे देखता है, उसे मार डालता है।" पर बोधिसत्व अपने बलसे परिचित थे। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक सिंहकी भाँति उस वनमें प्रवेश किया और उसके मध्य भागमें जा पहुँचे। उस समय एक यक्ष बहुत ही भीषण मूर्ति धारण करके उनके सामने आया। उसका शरीर तालके वृक्षके समान, सिर कूटागार * के समान, दोनों आँखें गमलोंके समान, ऊपरके दो दाँत दो मूलियोंके समान, मुख बाज पक्षीके मुखके समान, उदर अनेक प्रकारके रंगोंसे चित्रित और हाथ तथा पैर नील वर्णके थे। उसने बोधिसत्वसे कहा—"कहाँ जा रहे हो? ठहरो, तुम मेरे खाद्य हो।" बोधिसत्वने कहा—"देखो, मैं अपना बल समझकर ही इस वनमें आया हूँ। तुम मेरे सामने चले आए, यह कोई बुद्धिमत्ताका काम नहीं किया; क्योंकि मैं विषक्ति बाण चलाकर तुमको वहीं गिरा दूँगा, जहाँ तुम इस समय खड़े हो।" इतना कहकर उन्होंने शरासनमेंसे विषाक्त शर निकाला और सन्धान करके यक्ष पर फेंका। पर वह शर यक्षके रोएँमें बिंधकर झूलने लगा। इसके उपरांत बोधिसत्वने एक एक करके पचास बाण चलाए; पर वे

* कूटागार = मकानके ऊपरकी कोठरी या बँगला।

सभी बाण यक्षके रोओंमें ही बिंधकर रह गए, उसके शरीरमें एक भी बाण न बिंध सका। यक्षने एक बार अपना शरीर हिलाकर वे सब बाण झटकारकर अपने पैरोंके पास गिरा दिए और बोधिसत्वको पकड़नेके लिये वह आगे बढ़ा। बोधिसत्वने हुंकार करते हुए कोपसे खड्ग निकालकर उसपर प्रहार किया। वह खड्ग तेंतिस अंगुल लम्बा था। पर वह भी यक्षके रोओंको ही स्पर्श करके रह गया। इसके उपरांत बोधिसत्वने पहले शक्तिसे और तब मुद्गरसे प्रहार किया। पर ये दोनों भी उस यक्षके रोओं तक पहुँचकर ही रह गए और उन्हींमें फँस गए। उस समय बोधिसत्वने सिंहकी भाँति गरजकर कहा—"यक्ष, कदाचित् तुम यह नहीं जानते कि मेरा नाम पंचायुधकुमार है। तुम यह न समझना कि मैंने केवल धनुष बाण पर ही निर्भर करके इस वनमें प्रवेश किया है। मेरे शरीरमें भी विलक्षण बल है। अब मैं केवल एकमुक्केसे तुम्हारी हड्डी पसली चूर चूर करता हूँ।" पर जब उन्होंने दाहिने हाथके मुक्केसे प्रहार किया, तब उनका दाहिना हाथ भी उसके रोओंमें फँस गया। तब उन्होंने बाएँ हाथसे प्रहार किया, पर बायाँ हाथ भी फँस गया। उन्होंने दाहिने पैरसे आघात किया, वह भी फँस गया; बाएँ पैरसे आघात किया, वह भी फँस गया। परंतु उस समय भी बोधिसत्व हतोत्साह नहीं हुए। उन्होंने यह कहते हुए कि "लो, अबकी तुम्हें मैं चूर चूर किए देता हूँ।" मस्तकसे उसपर प्रहार किया। पर उनका मस्तक भी उसके रोओंमें फँसकर रह गया।

इस प्रकार बोधिसत्वके पाँचों अंग उस यक्षके रोओंमें फँस गए और वे उसके शरीरमें झूलने लगे। परंतु उनका मानसिक

तेज अब भी ज्योंका त्यों था। यक्षने सोचा कि यह पुरुष अद्वितीय वीर जान पड़ता है। मेरे जैसे यक्षके हाथमें पड़कर भी यह विचलित नहीं हुआ। मैं इतने दिनोंसे इस वनमें मनुष्य पकड़ पकड़कर खाया करता हूँ; पर आज तक मैंने ऐसा निर्भीक मनुष्य नहीं देखा। इसका कारण क्या है कि इसे मुझसे कुछ भी भय नहीं लगता। उसे बोधिसत्वको खा जानेका साहस नहीं हुआ। उसने पूछा—"क्यों जी, क्या तुम्हें मृत्युका भय नहीं लगता ?"

बोधिसत्वने उत्तर दिया—"भला मृत्युसे मुझे भय क्यों होने लगा ! यह तो निश्चय ही है कि एक बार जन्म लेना पड़ता है और एक बार मरना पड़ता है। इसके अतिरिक्त मेरे उदरमें वज्रायुध * है। तुम मुझे खा सकते हो, पर वह वज्रायुध तुम नहीं पचा सकते। वह तुम्हारी आँतें फाड़ डालेगा; इसलिये मेरी मृत्युसे तुम्हारी भी मृत्यु निश्चित है।"

बोधिसत्वकी ये बातें सुनकर यक्ष सोचने लगा कि यह ब्राह्मणकुमार सत्य कह रहा है। ऐसे पुरुष-सिंहके शरीरका मूँग बराबर मांस भी मैं न पचा सकूँगा। इसे छोड़ ही देना ठीक है। इस प्रकार मनमें डरकर उसने बोधिसत्वसे कहा—"ब्राह्मणकुमार, तुम पुरुष-सिंह हो। तुम मेरे हाथोंसे राहुग्रस्त चंद्रमाके समान मुक्त होकर अपनी ज्ञाति और परिवारके लोगोंके आनंदकी वृद्धि करनेके लिये अपने घर जाओ।"

बोधिसत्वने कहा—"यक्ष, मैं तो जाता हूँ; पर तुम्हारी क्या गति होगी ? अपने पूर्वजन्मोंके अकुशल या अनुचित कृत्योंके

* ज्ञानरूपी आयुध।

कारण इस जन्ममें तुम अति लोभी, हिंसापरायण, रक्तमांसभोजी यक्ष हुए हो। यदि इस जन्ममें भी तुम इसी प्रकारके अकुशल कर्मोंमें प्रवृत्त रहोगे, तो तुम्हें एक अंधकारमेंसे दूसरे अंधकारमें जाना पड़ेगा। पर जब तुमने मेरे दर्शन कर लिए, तब तुम ऐसे अकुशल कर्मोंमें आसक्त नहीं रह सकते। प्राणियोंकी हत्या करना महापाप है। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि निरयमें जाना पड़ता है, तिर्यग्योनिमें जन्म लेना पड़ता है, प्रेत या असुर बनना पड़ता है। यदि दैवात् कभी मनुष्यकी योनिमें भी जन्म हो गया, तो आयु बहुत ही कम होती है।"

बोधिसत्वने इस प्रकारके उपदेश देकर उस यक्षको पाँचों दुःशील कर्मोंके अशुभ फल और पंचशीलके शुभ फल बतलाए। इस प्रकार अनेक उपायोंसे उन्होंने यक्षके मनमें परलोकका भय उत्पन्न किया और उसे संयमी तथा पंचशीलपरायण बना दिया। इसके उपरांत उन्होंने उसे उस वनके देवताके पद पर स्थापित कर दिया, उसे पूजा और उपहार ग्रहण करनेका अधिकारी बना दिया और उसे अप्रमत्त रहनेके लिये सचेत करके वे उस वनसे चले गए। मार्गमें जिन लोगोंसे उनकी भेंट हुई, उन लोगोंको उन्होंने यह भी बतला दिया कि यक्षकी प्रकृतिमें किस प्रकारका परिवर्तन हो गया है।

अंतमें पंचायुधकुमारने वाराणसीमें पहुँचकर अपने माता-पिताको प्रणाम किया। उन्होंने उत्तर कालमें स्वयं राजपद प्राप्त करके धर्मपूर्वक प्रजापालन किया और दानादि पुण्य कृत्य करते हुए वे अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकको चले गए।

वानरेन्द्र जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक बंदरके रूपमें जन्म लिया था। बड़े होने पर वे बछेड़ेके समान ऊँचे और असाधारण बलवान् हुए। वे अकेले एक नदीके तट पर रहा करते थे। उस नदीके बीचमें एक द्वीप था जिसमें कई प्रकारके फलोंके वृक्ष थे। बोधिसत्व नदीके जिस तट पर रहा करते थे, उस तटसे द्वीपके ठीक आधे मार्गमें नदीके गर्भमें एक शैल था। हाथीके समान बलवाले बोधिसत्व पहली कुदानमें तट परसे उस शैल पर और दूसरी कुदानमें उस शैल परसे द्वीपमें पहुँच जाया करते थे। वे दिन भर वहाँ रहकर अनेक प्रकारके फल आदि खाया करते थे और संध्या समय फिर उसी प्रकार दो कुदानोंमें नदी पार करके अपने निवास-स्थान पर आ जाया करते थे।

उस नदीमें अपनी स्त्रीके साथ एक कुम्भीर रहा करता था। बोधिसत्वको नित्य नदीके आर पार आते जाते देखकर उसकी स्त्रीके मनमें इच्छा हुई कि किसी प्रकार इस बन्दरका कलेजा खाना चाहिए। उसने अपने पति कुम्भीरसे कहा—"तुम मुझे किसी प्रकार इस वानरेन्द्रके हृदयका मांस ला दो।" कुम्भीरने कहा "अच्छा मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा। आज सन्ध्या समय जब यह बन्दर लौटने लगेगा, तब मैं इसे पकड़ूँगा।" यह निश्चय करके वह कुम्भीर उस शैल पर जा चढ़ा।

बोधिसत्व नित्य यह देख लिया करते थे कि आज नदीका

जल कितना चढ़ा है और यह पर्वत पानीसे कितना निकला है। दिन भर द्वीप पर इधर उधर घूमनेके उपरान्त सन्ध्या समय उन्होंने जब उस शैलकी ओर देखा, तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि आज नदीका जल न तो घटा है और न बढ़ा। फिर यह उसका ऊपरी भाग इतना ऊँचा क्यों जान पड़ता है। उन्हें सन्देह हुआ कि कदाचित् मुझे पकड़नेके लिये कुम्भीर यहाँ आ बैठा है। वे भेद लेनेके लिये वहीं बैठ गए और कुम्भीरको सुनानेके लिए झूठ मूठ उस शैलसे बातें करने लगे। उन्होंने एक बार जोर-से चिल्लाकर कहा—"क्यों जी पत्थर !" कुछ उत्तर न पाकर थोड़ी देरके उपरान्त उन्होंने फिर उसी प्रकार जोर जोरसे दो तीन बार पुकारा—"क्यों जी पत्थर !" "क्यों जी पत्थर !" पर वहाँ पत्थर क्या बोलता ! अन्तमें उन्होंने कहा—"क्यों भाई पत्थर, आज तुम बोलते क्यों नहीं हो ?"

कुम्भीरने सोचा कि कदाचित् यह पत्थर रोज इस बन्दरकी बातका उत्तर दिया करता है। आज मैं ही क्यों न इसकी बात-का उत्तर दूँ। इसलिये उसने कहा—"हाँ जी वानरेन्द्र ।" बोधि-सत्वने पूछा—"तुम कौन ?" कुम्भीरने उत्तर दिया—"मैं कुम्भीर हूँ।" बोधिसत्वने पूछा—"तुम वहाँ क्यों बैठे हो ?" कुम्भीरने कहा—"तुमको पकड़कर तुम्हारा कलेजा खानेके लिये।" बोधिसत्वने देखा कि अब इस द्वीपसे लौटकर तट तक पहुँचने-का और कोई मार्ग नहीं है; इसलिये उन्होंने कुम्भीरको छलना चाहा। उन्होंने कहा—"भाई कुम्भीर, मैं अपने आपको तुम्हें पकड़ा देता हूँ। तुम मुँह खोलो। मैं यहाँ से कूद पड़ूँगा; बस तुम मुझे पकड़ लेना।"

कहते हैं कि जिस समय कुम्भीर मुँह खोलता है, उस समय उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं*। कुम्भीरकी समझमें यह बात नहीं आई कि यह बन्दर मुझे धोखा देना चाहता है। इसलिये उसने बन्दरके कहनेके अनुसार मुँह खोल दिया और आँखें बन्द हो गई। बोधिसत्व तुरन्त कूदकर पहले तो उसके मस्तक पर पहुँचे और तब वहाँसे छलाँग भरकर तट पर जा पहुँचे। यह अद्भुत व्यापार देखकर कुम्भीरने कहा—"यदि चार गुण हों तो सब शत्रुओंका दमन किया जा सकता है। मैं देखता हूँ कि ये चारों ही गुण तुममें हैं। सत्य, धृति, त्याग और विवेक ये चारों गुण संकटके समय बड़े शत्रुओंसे रक्षा करते हैं।"

इस प्रकार बोधिसत्वकी प्रशंसा करके कुम्भीर अपने स्थानको चला गया।

---

* आधुनिक प्राणिशास्त्रके ज्ञाता यह बात नहीं मानते।

वरुण जातक

प्राचीन कालमें गान्धार राज्यकी तक्षशिला नगरीमें बोधिसत्व एक प्रसिद्ध आचार्य थे। पाँच सौ शिष्य उनके पास रहकर विद्याभ्यास किया करते थे। एक दिन उन्होंने शिष्योंको लकड़ी लानेके लिये जंगलमें भेजा। वे जंगलमें जाकर लकड़ियाँ चुनने लगे। उनमेंसे एक विद्यार्थी बहुत आलसी था। उसने वरुणका एक बहुत बड़ा वृक्ष देखकर सोचा—जान पड़ता है कि यह वृक्ष सूखा हुआ है। मैं थोड़ी देर तक इसके नीचे सो लूँ। फिर इस पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़कर चला चलूँगा। यह सोचकर वह अपना उत्तरीय वस्त्र बिछाकर नाक बजाता हुआ सोने लगा। जब और सब शिष्य लकड़ियाँ लेकर गुरुके आश्रमकी ओर जाने लगे, तब उन लोगोंको वह उस अवस्थामें सोया हुआ दिखलाई दिया। उन लोगोंने उसकी पीठ पर लात मारकर उसे जगा दिया और आप चले गए। वह आलसी शिष्य उठकर आँखें मलने लगा; क्योंकि उस समय तक उसकी नींद अच्छी तरह नहीं खुली थी। उसी नींदकी झोंकमें वह उठकर वृक्ष पर चढ़ने लगा। पर ज्यों ही उसने एक डाल पकड़कर खींची, त्यों ही वह टूट गई और छटककर उसकी आँखमें लगी। उसी समय उसने एक हाथसे तो वह आँख दबाई और दूसरे हाथसे वृक्षकी कची कची डालियाँ तोड़कर नीचे फेंकीं और अन्त-में वृक्षसे नीचे उतरकर उन लकड़ियोंकी आँटिया बाँधी। इसके उपरान्त वह भी गुरुके आश्रममें पहुँचा। उसके सहपाठियोंने

सूखी हुई लकड़ियोंका जो ढेर लगाया था, उसी ढेर पर उसने अपनी कच्ची और गीली लकड़ियाँ पटक दीं।

एक दिन किसी ग्रामके एक निवासीके यहाँ ब्राह्मण भोजन था, जिसमें आचार्यको भी निमंत्रण था। उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—"कल सब लोगोंको अमुक ग्राममें चलना होगा। परन्तु तुम लोग बिना कुछ भोजन किए न जा सकोगे। अतः कल प्रातःकाल यागु पाक होगा। तुम लोग वही खाकर प्रस्थान करना। वहाँ पहुँचने पर सब लोगोंके लिये अलग अलग भोजन मिलेगा। वह सब भोजन लेकर तुम लोग लौट आना।"

आचार्यके आज्ञानुसार शिष्योंने दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर दासीसे कहा—"हम लोगोंके लिये शीघ्र ही यागुपाक करो।" जब दासी लकड़ी लानेके लिये गई, तब उसे सबसे ऊपर वही कच्ची और गीली लकड़ियाँ मिलीं। वह वही लकड़ियाँ लाकर जलाने लगी। पर बहुत कुछ फूँकने और प्रयत्न करने पर भी आग न जल सकी। इतनेमें सूर्योदय हो गया। उस समय शिष्यों-ने कहा—"विलंब हो गया। अब तो जानेका समय भी नहीं रह गया।" इसके उपरान्त वे लोग आचार्यके पास गए। आचार्यने उन्हें देखकर पूछा—"क्यों जी, अभी तक तुम लोग गए नहीं?" शिष्योंने कहा—"जी नहीं गुरुदेव, हम लोग अभी तक नहीं जा सके।" आचार्यने पूछा—"क्यों नहीं जा सके?" शिष्योंने उत्तर दिया—"अमुक आलसी छात्र उस दिन हम लोगोंके साथ लकड़ियाँ चुनने गया था। पहले तो जाकर वह एक वरुण वृक्षके नीचे सो गया था। अन्तमें जब वह जल्दी जल्दी वृक्ष पर चढ़ने लगा, तब उसकी आँखमें चोट लग गई।

वही कच्ची और गीली लकड़ियाँ उठा लाया था और उन लकड़ियों को उसने हम सब लोगोंकी लाई हुई सूखी लकड़ियोंके ऊपर रख दिया था। दासीने समझा कि सभी लकड़ियाँ सूखी हैं। पर उन कच्ची लकड़ियोंसे आग न जल सकी। इसी कारण हम लोग अभी तक न जा सके।" उस आलसी छात्रका यह हाल सुनकर आचार्यने कहा—"एक मूर्खके दोषके कारण तुम सब लोगोंके कार्यमें हानि हुई।" इसके उपरान्त उन्होंने इस आशयकी गाथा कही—

"जो काम पहले करना चाहिए, वह काम पीछे करनेवाले आलसी लोग बहुत पछताते हैं। उसका प्रमाण यह निर्बोध आलसी शिष्य है, जो वरुणकी कच्ची लकड़ियाँ लाकर इस प्रकार लज्जित हुआ है।"

सत्यं-किल जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तका दुष्टकुमार नामक एक पुत्र था। उसका स्वभाव इतना भीषण और निष्ठुर था कि लोग उससे उतना ही डरते थे जितना आहत विषधरसे डरते हैं। लोगोंके साथ बात-चीत करते करते वह उनको गालियाँ दे बैठता था और कभी कभी मार भी देता था। इस कारण वह भीतर बाहर सभी जगह लोगोंकी आँखोंमें काँटोंके समान खटकता था। उसे देखते ही लोग समझने लगते थे कि मानों कोई राक्षस हम लोगोंको निगलनेके लिये चला आ रहा है।

एक दिन दुष्टकुमार अपने बहुत से साथियोंको लेकर जल-क्रीड़ा करनेके लिये नदी तट पर गया। वहाँ जाकर सब लोग क्रीड़ामें मत्त हो गए। इतनेमें जोरोंसे आँधी आई और पानी बरसने लगा। चारों ओर अन्धकार छा गया। यह देखकर दुष्टकुमारने अपने परिचारकोंसे कहा—"मुझे नदीके मँझधारमें ले चलो और वहाँसे मुझे स्नान करा लाओ।" परिचारकोंने उसे मँझधारमें ले जाकर परामर्श किया कि आओ, हम लोग आज इस पापिष्ठको यहीं मार डालें। राजा हम लोगोंका क्या कर लेंगे। यह सोचकर उन लोगोंने यह कहते हुए राजकुमारको जलमें फेंक दिया कि "जा, दूर हो दुष्ट" और आप लौटकर नदी तट पर आ गए। जब वे लौट आए, तब और लोग उनसे पूछने लगे—"कुमार कहाँ हैं?" उन लोगोंने कहा—"हमें तो कहीं

दिखाई नहीं देते। जान पड़ता है कि वे आँधी देखकर पहले ही प्रासादको चले गए हैं।"

इसके उपरान्त सब लोग राजप्रासादको लौट गए। राजा-ने पूछा—"कुमार कहाँ हैं?" उन लोगोंने कहा—"महाराज, हम लोग तो नहीं जानते। जब आँधी आई और पानी बरसने लगा, तब हम लोगोंने सोचा कि कदाचित् वे पहले ही प्रासादको लौट गए। इसी कारण हम लोग भी चले आए हैं।" राजा उसी समय पुरद्वार खोलकर नदी तट पर पहुँचे और चारों ओर घूम घूमकर पुत्रको ढूढ़ने लगे; पर कहीं कुमारका पता न लगा।

उधर कुमारकी जो दशा हुई, वह सुनिए। जब मेघके अन्ध-कारके कारण कुछ दिखाई न पड़ने लगा, तब उसने अपने आपको बहावमें छोड़ दिया। एक वृक्षका तना बहा जाता था। वह उसी तने पर जमकर बैठ गया और मृत्युके भयसे "अरे कोई मुझे बचाओ।" "अरे कोई मुझे बचाओ।" कह कहकर चिल्लाने लगा।

वाराणसीके एक बहुत धनाढ्य वणिकने उस नदीके तट पर चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ गाड़ रखी थीं। वह बहुत अर्थ-लोलुप था; इसलिये मृत्युके उपरान्त वह सर्प बनकर उसी धनके पास एक बिलमें रहा करता था। इसी प्रकार एक और वणिकने तीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ गाड़ रखी थीं और धन-तृष्णाकी प्रबल-ताके कारण वह चूहा बनकर उसी धनके पास रहा करता था और उसका पहरा दिया करता था। जब अति वृष्टिके कारण नदीमें बाढ़ आई, तब साँप और चूहे दोनोंके बिलोंमें पानी भर गया और वे भी नदीमें बह चले। बहते बहते उनको भी

वही वृक्षका तना मिला और उसपर एक ओर साँप और दूसरी ओर चूहा चढ़ बैठा। इसके उपरान्त एक तोतेने भी आकर उसी वृक्षके तने पर आश्रय लिया। वह तोता नदीके किनारे सेमलके एक पेड़ पर रहा करता था। बाढ़के कारण वह वृक्ष टूटकर नदीमें गिर पड़ा था। तोतेने उड़ जाना चाहा था, पर उसके उड़ते समय जोरोंसे पानी बरसने लगा और वह उसी वृक्षके तने पर गिर पड़ा। इस प्रकार ये चार प्राणी उस एक ही तने पर बहते हुए चल पड़े। इतनेमें रात हो गई।

जिस समयकी यह बात है, उस समय बोधिसत्वने एक उदीच्य ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया था और बड़े होने पर प्रव्रज्या ग्रहण करके वे उसी नदीके तट पर एक निर्जन स्थानमें कुटी बनाकर रहा करते थे। वे रातके समय बाहर निकलकर इधर उधर टहल रहे थे; इतनेमें उन्हें उस राजकुमारका आर्त्तनाद सुनाई दिया। उन्होंने सोचा कि मेरे जैसे दया-दाक्षिण्यके व्रती मुनिके पास रहते हुए यदि यह मनुष्य मर जायगा, तो यह बहुत ही अनुतापकी बात होगी। अतः जिस प्रकार होगा, मैं इसका उद्धार करूँगा। यह सोचकर उन्होंने उसको आश्वासन देते हुए कहा—"डरो मत, डरो मत," और वे नदीमें कूद पड़े। उनके शरीरमें हाथीके समान बल था। वे चट उस तनेको खींचकर तट पर ले आए और उसपरसे राजकुमारको उठा लिया। इसके उपरान्त उन्होंने साँप, चूहे और तोतेको देखा। उन सबको भी वे उठाकर अपने आश्रममें ले गए और वहाँ उन्होंने आग सुलगाकर उन सब प्राणियोंको सेंकना आरम्भ किया। पर पहले उन्होंने साँप, चूहे और तोतेको सेंका था और तब राजकुमारको;

क्योंकि उन्होंने सोचा कि मनुष्यकी अपेक्षा ये तीनों प्राणी दुर्बल हैं; इसलिये पहले इन्हींकी परिचर्या करनी चाहिए। जिस समय वे फल आदि लाए, उस समय भी उन्होंने यही सोचकर पहले उन तीनों जीवोंको और तब राजकुमारको भोजन कराया। यह देखकर दुष्टकुमारको बहुत क्रोध आया। उसने सोचा कि 'मैं राजपुत्र हूँ और यह भण्ड तपस्वी मेरी अपेक्षा इन जन्तुओंका अधिक आदर करता है। बस उसके मनमें बोधिसत्वके प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो गई।

बोधिसत्वकी सेवा शुश्रूषाके कारण कुछ ही दिनोंमें राजकुमार और वे तीनों जन्तु स्वस्थ और सबल हो गए। इतनेमें बाढ़ भी उतर गई। सब लोग वहाँसे चलनेको उद्यत हुए। चलते समय साँपने बोधिसत्वसे कहा—"आपने मेरे साथ बहुत उपकार किया है। मैं निर्धन नहीं हूँ; क्योंकि अमुक स्थानमें मेरी चालीस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ गड़ी हैं। यदि आपको कभी आवश्यकता हो, तो आप वह सारा धन अपना ही समझिएगा। आप वहाँ पहुँचकर "साँप, साँप" कहकर पुकारिएगा। मैं तुरन्त आपकी सेवामें उपस्थित होकर आपको वह धन दूँगा।" चूहेने कहा—"आप मेरे बिलके पास पहुँचकर "चूहे, चूहे" कहकर पुकारिएगा। मैं तुरन्त बाहर निकलकर आपको अपनी तीस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दूँगा।" तोतेने कहा—"महाराज, मेरे पास धन सम्पत्ति कुछ भी नहीं है। तो भी यदि आपको कभी अच्छे धानकी आवश्यकता हो, तो आप अमुक स्थान पर पहुँचकर "तोते, तोते" पुकारिएगा। मैं अपने साथियोंकी सहायतासे आपको गाड़ियों बढ़िया धान ला दूँगा। मित्रद्रोही राजकुमारने सोचा था कि जब कभी

यह मेरे फँदेमें फंसेगा, तब मैं इसे मार ही डालूँगा। पर फिर भी चलते समय उसने अपने मनका वह भाव छिपाकर कहा—"जिस समय मैं राजा होऊँगा, उस समय आप कृपाकर एक बार मेरे राजभवनमें पधारिएगा। मैं अन्न, वस्त्र, शय्या और भैषज्य इन चारों प्रकारके उपचारोंसे आपकी पूजा करूँगा।" इसके कुछ ही दिनोंके उपरान्त वह दुष्टकुमार वाराणसीका राजा हो गया।

एक दिन बोधिसत्वके जीमें आया कि चलकर देखना चाहिए कि ये चारों अपनी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करते हैं या नहीं। पहले वे साँपके पास पहुँचकर "साँप, साँप" चिल्लाने लगे। उनकी आवाज सुनते ही साँप बाहर निकल आया और प्रणाम करके बोला—"महाराज, यह चालीस करोड़ मुद्राएँ प्रस्तुत हैं। आप ले जा सकते हैं।" बोधिसत्वने कहा—"अच्छा, जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं तुमसे कहूँगा।" इसके उपरान्त वे वहाँसे चलकर चूहेके बिलके पास पहुँचे और उसे पुकारा। वह भी साँपकी भाँति चट बाहर निकल आया और अपना धन समर्पित करने लगा। इसके उपरान्त बोधिसत्व उस तोतेके पास पहुँचे और उसे पुकारने लगे। वह अपने वृक्ष पर ही बैठा हुआ था। उनकी आवाज सुनते ही वह नीचे उतर आया और बहुत ही आदरपूर्वक कहने लगा—"महाराज, यदि आज्ञा हो तो मैं अभी अपने साथियोंको लेकर जाऊँ और हिमालयकी तराईमेंसे आपके लिये अच्छेसे अच्छा स्वयंजात धान लेता आऊँ।" बोधिसत्वने कहा—"अभी तो मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। जब आवश्यकता होगी, तब मैं तुम्हारी इस बातका स्मरण रखूँगा। अब तुम अपने स्थान पर जाकर बैठो।"

तोतेसे विदा होकर बोधिसत्त्व राजाकी परीक्षा लेनेके लिये वाराणसी पहुँचे और राजोद्यानमें जा ठहरे। दूसरे दिन उन्होंने तपस्वियोंके वेशमें भिक्षाचर्याके लिये नगरमें प्रवेश किया। उसी समय वह मित्रद्रोही राजा अनेक प्रकारके अलंकार आदि पहनकर हाथी पर सवार होकर अपने साथियोंके साथ नगरके प्रदक्षिणाके लिये बाहर निकला था। बोधिसत्त्वको दूरसे ही देखकर उस दुष्टने मनमें सोचा—"यह वही भण्ड तपस्वी है और मेरे सिर पर चढ़कर चव्य-चूष्य भोजन करनेके लिये आया है। इसने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसकी चर्चाका समय ही न आने देना चाहिए; और उससे पहले ही इसका सिर कटवा देना चाहिए।" यह सोचकर उसने अपने अनुचरोंकी ओर देखा। वे—"महाराज, क्या आज्ञा है।" कहकर उसके आदेशकी प्रतीक्षा करने लगे। उसने कहा—"यह भण्ड तपस्वी भिक्षाके लिये मुझे तंग करने आया है। यह मेरे पास तक न पहुँचने पावे। इसे तुरन्त पकड़कर बाँध लो और चौमुहानी चौमुहानी पर खड़ा करके मारो। तब इसे नगरके बाहर श्मशान पर ले जाओ। वहाँ इसका सिर धड़से अलग कर दो और तब कटा हुआ धड़ सूलीमें टाँग दो।"

सेवक लोग "जो आज्ञा" कहकर बोधिसत्त्वको पकड़कर श्मशानकी ओर ले चले। मार्गमें वे चौमुहानी पर खड़े हो जाते थे और कोड़ोंसे उनको मारते थे। पर बोधिसत्त्व न तो रोते थे और न चिल्लाते थे। वे रह रहकर इस आशयकी गाथा कहते जाते थे—

"यदि मनुष्य और काठ दोनों साथ ही पानीमें बह जाते हों,

तो लोग कहते हैं कि काठ निकाल लो और मनुष्यको छोड़ दो। लोगों-का यह कहना बहुत ठीक है। इसका अभिप्राय आज मेरी समझमें आया। यदि तुम काठको निकालोगे, तो वह तुम्हारे काम आवेगा; पर यदि मनुष्यको निकालोगे, तो वह तुम्हारा शत्रु हो जायगा।"

राजाके सेवक जिस समय बोधिसत्वको मारते थे, उस समय वे यही गाथा कहते थे। एक स्थान पर उनको देखकर बहुत से लोग एकत्र हो गए थे। उनमेंसे कुछ लोग विज्ञ थे। वे पूछने लगे—"क्यों महाराज, क्या आपने हमारे राजाका कभी कोई उपकार किया था?" इसपर बोधिसत्वने विस्तारपूर्वक सब समाचार सुनाकर कहा—"बस, उसी भीषण बाढ़मेंसे बहते हुए तुम्हारे राजाको निकालनेका यह परिणाम है। उस समय मैंने बुद्धिमानोंके उपदेशके अनुसार काम नहीं किया था; इसी लिये इस समय मैं यह बात कह रहा हूँ।"

बोधिसत्वके मुँहसे ये सब बातें सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय सभी नगर-निवसी कहने लगे—"यह राजा कैसा पापिष्ठ है! इन धर्म-परायण तपस्वीने उसके प्राण बचाए थे। वह इनकी पूजा न करके उलटे इनके साथ इस प्रकारका अत्याचार कर रहा है। ऐसे राजासे हम लोगोंका भला क्या उपकार होगा! चलो, इस नराधमको अभी पकड़कर मारो।" बस सब लोगोंने क्रोधके आवेशमें आकर राजाको चारों ओरसे घेर लिया और तीर, शक्ति, मुद्गर, पत्थर जो जिसे मिला, उसीसे वह राजाको मारने लगा; और इतना मारा कि उसके प्राण निकल गए। इसके उपरान्त उन लोगोंने घसीटकर उसका मृत शरीर एक गड्ढेमें फेंक दिया और बोधिसत्वको उसके स्थान पर सिंहासन पर बैठा दिया।

राजपद पाकर बोधिसत्व धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। एक दिन उनके जीमें आया कि एक बार साँप, चूहे और तोतेकी ओर एक प्रकारसे परीक्षा लेनी चाहिए। अतः वे साँपके बिलके पास पहुँचे और उसे पुकारने लगे। साँप बाहर निकल कर प्रणाम करके बोला—"प्रभु, यह आपका धन है। इसे कृपाकर ग्रहण कीजिए।" बोधिसत्वने वह धन लेकर अपने सेवकोंको दे दिया और चूहेके पास पहुँचकर उसे पुकारने लगे। चूहेने भी तुरन्त अपनी तीस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ उनकी सेवामें समर्पित कर दीं। वह धन भी अपने अनुचरोंको देकर वे तोतेके वृक्षके पास पहुँचकर उसे बुलाने लगे। तोतेने भी चट आकर उनको प्रणाम किया और कहा—"यदि आज्ञा हो तो जाकर धान ले आऊँ।" बोधिसत्वने कहा—"जब आवश्यकता होगी तब कहूँगा। चलो, तुम लोगोंको राजधानीमें ले चलूँ।" अब वे सत्तर करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ, साँप, चूहे और तोतेको अपने साथ लेकर वाराणसीकी ओर चले। एक मनोरम प्रासादमें पहुँचकर वह सब धन उन्होंने वहाँ रखवा दिया और साँपके रहनेके लिये सोनेकी नली, चूहेके रहनेके लिये स्फटिक का बिल और तोतेके रहनेके लिये सोनेका पिंजरा बनवाया और उनमें उन्हें रख दिया। अब वे लोग भी पुण्य कृत्य करने लगे। इस प्रकार सब लोग प्रीतिपूर्वक अपना समय बिताने लगे और सबने यथा समय अपने अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये अपनी भव-लीला संवरण की।

कृष्णधर्म जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें पहले वैश्रवणकी मृत्यु * हो गई और शक्रने एक दूसरे देवताको उनके राज्यका भार प्रदान किया। नए वैश्रवणने राजपद ग्रहण करके तरु, लता, गुल्म आदिके देवताओंको आज्ञा दी कि तुम लोग जहाँ चाहो, वहाँ विमान बनाकर निवास करो।

उस समय बोधिसत्व हिमालयमें एक वृक्ष-देवताके रूपमें निवास किया करते थे। उन्होंने अपने साथियोंको परामर्श दिया—"तुम लोग विमान बनानेके लिये व्यर्थ ही बहुत से वृक्षोंका नाश करोगे। मैंने इस शाल वनमें विमान बनाया है। तुम लोग भी इसीके चारों ओर निवास करो। वृक्ष-देवताओंमें जो लोग बुद्धिमान थे, उन्होंने तो बोधिसत्वकी बात मान ली; पर जो लोग मूर्ख थे, उन्होंने कहा—"हम लोग वनमें क्यों रहने लगे। ग्रामों, नगरों और राजधानियों आदिके बाहर और आस पास रहनेमें बहुत सुभीता होगा। जो देवता ऐसे स्थानोंमें निवास करते हैं, वे अपने भक्तोंसे अनेक उपहार पाते हैं।" इस प्रकार वे देवता लोग बस्तियोंके आस पास जाकर बड़े बड़े वृक्षों पर रहने लगे।

संयोगसे एक दिन भीषण आँधी आई। यद्यपि पुराने वृक्षोंकी जड़ बहुत दृढ़ थी और उनकी अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ

---

*वैश्रवण कुबेरका दूसरा नाम है। बौद्धोंके मतसे देवता भी मरणशील होते है; और उनके मरने पर दूसरा व्यक्ति उनके नामसे उनके स्थान पर बैठता है।

थीं, तथापि वे उस भीषण आँधी का वेग न सह सके। उनकी शाखाएँ और प्रशाखाएँ छिन्न भिन्न हो गई और काण्ड तथा प्रकाण्ड आदि टूट गए; और बहुतेरे वृक्ष तो जड़ मूलसे ही उखड़ गए। पर वह आँधी शाल वृक्षोंका कुछ भी न बिगाड़ सकी।

जिन वृक्ष-देवताओंके विमान टूट गए थे, वे अपने बाल-बच्चोंको लेकर हिमालयकी ओर चल पड़े और वहाँ पहुँचकर उन्होंने शाल वनके निवासी देवताओंसे अपनी दुःख भरी कहानी कही। उन सब देवताओंने बोधिसत्वके पास जाकर इन सब लोगोंके आनेका समाचार कहा। सब बातें सुनकर बोधिसत्वने कहा—"इन लोगोंने मेरे सत्परामर्शके अनुसार काम नहीं किया, इसी लिये इनकी यह दुर्दशा हुई।" इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कहकर धर्मकी व्याख्या की—

"वनोंमें बहुत से वृक्ष पास पास होते हैं; इसलिये उन्हें आँधी आदिका कोई भय नहीं रहता। पर जो वृक्ष अकेला रहता है, उसका निस्तार प्रायः असम्भव हुआ करता है। इसी प्रकार जो लोग एक स्थान पर मिल जुलकर रहते हैं, उनको कभी शत्रुओंका भय नहीं होता। पर जब बुद्धि-दोषके कारण कलह उपस्थित होता है, तब अवश्य ही कुलका नाश होता है।"

बोधिसत्वने इस प्रकारका उपदेश किया था। इसके उपरान्त जीवनका अवसान होने पर वे अपने कर्मोंके अनुरूप फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए।

मत्स्य जातक

इसी कोशल राज्य और श्रावस्ती नगरमें, जहाँ इस समय जेतवन सरोवर है, वहाँ, किसी समय लताओं आदिसे परिवृत एक और सरोवर था। बोधिसत्व मछलीका जन्म ग्रहण करके उस सरोवरमें रहा करते थे। इस समयकी भाँति उस समय भी अनावृष्टिके कारण सरोवर और तड़ाग आदि सूखकर जल-रहित हो गए थे और मछलियों तथा कछुओं आदिने कीचड़ या दलदलमें आश्रय लिया था। उस समय भी कौवे आदि पक्षी आ आकर उसी कीचड़मेंसे मछलियाँ पकड़ते थे और उन्हें चोंचमें उठाकर खा जाया करते थे। जब बोधिसत्वने देखा कि हमारे साथकी मछलियाँ आदि इस प्रकार नष्ट हो रही हैं, तब उन्होंने सोचा—"इस विपत्तिसे मेरे सिवा और कोई इन लोगोंकी रक्षा नहीं कर सकता। अतः मैं धर्मको साक्षी रखकर शपथ-पूर्वक वर्षा कराऊँगा जिससे इन लोगोंका दुःख दूर हो।" यह संकल्प करके वे उस कृष्ण वर्णके कीचड़मेंसे निकले। उनका विशाल शरीर चन्दनके काठसे बनी हुई और काजल पोती हुई पेटीके समान जान पड़ता था। वे दोनों आँखें खोलकर आकाश-की ओर देखते हुए पर्जन्य देवताको सुनाकर कहने लगे—"हे पर्जन्य! मैं अपने सजातियोंकी दुर्दशा देखकर बहुत ही दुःखी हूँ। मैं शीलवान् हूँ और अपने सजातियोंकी दुर्दशासे दुःखी हूँ, यह देखकर भी तुम वर्षा नहीं करते, यह बहुत आश्चर्यकी बात है। मैंने जिस जातिमें जन्म लिया है, उस जातिके जीव एक

दूसरेका मांस खाकर अपना निर्वाह करते हैं। परन्तु मैंने आज तक कभी चावल बराबर भी मछलीका मांस नहीं खाया है और न किसी जीवकी प्राणहानि की है। यदि मेरा यह कथन सत्य हो, तो तुम इसी समय वर्षा करके मेरे सजातियोंका दुःख दूर करो।" स्वामी जिस प्रकार अपने सेवकको कोई आदेश देता है, उसी प्रकार बोधिसत्वने पर्जन्य देवको आदेश देकर नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"हे पर्जन्य, आओ और गरजो, जिसमें कौवोंकी आशा पर पानी फिर जाय। तुम वर्षा करो, जिससे मेरे सजातियोंकी रक्षा हो।"

बोधिसत्वके इस प्रकार कहते ही यथेष्ट वृष्टि हुई और बहुत से प्राणी मरनेसे बच गए। समय पाकर बोधिसत्वके जीवनका अन्त हुआ और वे अपने कर्मोंके अनुसार फल भोगनेके लिये दूसरे लोकमें चले गए।

महास्वप्न जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने उदीच्य ब्राह्मण कुलमें जन्म ग्रहण किया था। वयस्क होने पर उन्होंने ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण करके अभिज्ञा और समापत्ति प्राप्त की और हिमालयमें जाकर ध्यानका सुख भोगने लगे।

राजा ब्रह्मदत्तने एक दिन एक सोलह देखे थे और ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे उनका फल पूछा था। ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययनके लिये यज्ञका अनुष्ठान किया। उन ब्राह्मणोंमेंसे एक तरुण और बुद्धिमान विद्यार्थी था। उसने आचार्यसे कहा—"आपने मुझे तीनों वेदोंकी शिक्षा दी है। क्या इस आशयका वेदका एक भी वाक्य आपको स्मरण नहीं है कि एकके प्राणोंका नाश करके दूसरेका मंगल करना असम्भव है?" आचार्यने कहा—"बेटा, इस यज्ञमें हम लोगोंको बहुत सा धन मिलेगा। जान पड़ता है कि तुमको राजाका धन बचानेकी चिन्ता हो रही है।" शिष्यने कहा—"आचार्य, आपके जीमें जो कुछ आवे, वह आप कीजिए। मेरे यहाँ रहनेसे कोई लाभ नहीं है।" इतना कहकर वह वहाँसे उठकर राजाके उद्यानमें चला गया।

बोधिसत्वने उसी दिन ध्यानकी सहायतासे ये सब बातें जान लीं। उन्होंने सोचा कि यदि मैं इसी समय नगरमें जाऊँ, तो बहुतेरे जीवोंको बन्धनसे छुड़ा सकता हूँ। वे आकाश मार्गसे चलकर राजाके उद्यानमें जा पहुँचे और एक शिला पर बैठ गए। वहाँ वे स्वर्णकी प्रतिमाके समान शोभा पा रहे थे। उस ब्रह्मचारी

ब्राह्मणने बोधिसत्वके पास आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। दोनोंमें आलाप होने लगा। बोधिसत्वने पूछा—"क्यों जी, यहाँके राजा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं ?" ब्राह्मण शिष्यने उत्तर दिया—"राजा स्वयं तो धार्मिक हैं, पर ब्राह्मण लोग उनको अनुचित मार्ग पर ले जाते हैं। राजाने सोलह स्वप्न देखे थे और ब्राह्मणोंसे उनका फल पूछा था। इसपर ब्राह्मणोंने उनसे यज्ञ कराना आरम्भ कर दिया है। यदि आप कृपा करके राजाको उन स्वप्नोंका ठीक ठीक फल बतला दें, तो बहुत से प्राणियोंकी रक्षा हो जाय।" बोधिसत्वने कहा—"यह तो ठीक है। पर न तो मैं राजाको ही जानता हूँ और न राजा ही मुझे जानते हैं। हाँ, राजा यदि यहाँ आकर मुझसे स्वप्नोंका फल पूछें, तो मैं उनको यथार्थ फल बतला सकता हूँ।" शिष्यने कहा—"मैं अभी जाकर राजाको यहाँ ले आता हूँ। जब तक मैं लौटकर न आऊँ, तब तक आप अनुग्रहपूर्वक यहीं ठहरे रहें।" बोधिसत्व इस पर सहमत हो गए और उस शिष्यने राजाके पास जाकर कहा—"महाराज, एक व्योमचारी तपस्वी उद्यानमें आकर ठहरे हुए हैं। वे आपके स्वप्नोंका फल बतलाना चाहते हैं। यदि आप कृपाकर वहाँ चलें, तो बहुत अच्छा हो।"

यह सुनकर राजा अपने बहुत से अनुचरोंको साथ लेकर उसी समय उद्यानमें जा पहुँचे और तपस्वीके चरण छूकर एक ओर बैठकर पूछने लगे—"भगवन्, क्या यह बात ठीक है कि आप मेरे स्वप्नोंका फल बतला सकते हैं ?" बोधिसत्वने उत्तर दिया—"हाँ, बतला सकता हूँ। आप बतलाइए कि आपने क्या क्या स्वप्न देखे हैं।" राजाने अपने सोलहो स्वप्न कह सुनाए।

सब स्वप्न सुनकर बोधिसत्वने कहा—"इन स्वप्नोंसे आपका किसी प्रकारका अमंगल नहीं हो सकता।" जब राजाको इस प्रकार आश्वासन मिल गया, तब उन्होंने यज्ञका विचार त्याग दिया और बलिके लिये जितने जीव बाँधे हुए थे, वे सब छोड़ दिए गए। इसके उपरान्त बोधिसत्व आकाशमें उठे और वहीं अधरमें बैठकर उन्होंने राजाको बहुत से धर्मोपदेश दिए, जिसके कारण राजाने पंचशीलके पालनकी प्रतिज्ञा की। अंतमें बोधिसत्वने कहा—"महाराज, अब आप कभी ब्राह्मणोंकी बातमें आकर पशुओंकी हिंसाका आयोजन न कीजिएगा।" इसके उपरान्त बोधिसत्व आकाश मार्गसे ही अपने निवास-स्थानको चले गए। ब्रह्मदत्त उनके उपदेशके अनुसार चलने लगे और दान-पुण्य करते हुए अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये यथा समय शरीर त्यागकर दूसरे लोकको चले गए।

इल्लीस जातक

वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें इल्लीस नामक एक श्रेष्ठी था, जिसके पास अस्सी करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं। मनुष्यमें जितने दोष हो सकते हैं, उनमेंसे कदाचित ही कोई दोष ऐसा न हो जो इल्लीसके शरीर या चरित्रमें न हो। वह लँगड़ा, कुबड़ा और भेंगा था; धर्म पर उसकी तनिक भी श्रद्धा न थी; और वह किसी बातसे कभी संतुष्ट न होता था। वह इतना बड़ा कृपण था कि दूसरोंको कुछ देना तो दूर रहा, आप भी एक कौड़ीका भोग न करता था। इसी कारण लोग उसके घरसे उतना ही दूर रहते थे, जितना राक्षसोंवाले सरोवरसे रहते हैं। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह थी कि उससे पिता, पितामह आदि सात पीढ़ियोंमें तो सदासे बहुत अधिक दान-पुण्य होता आया था; पर जबसे इल्लीस श्रेष्ठी पद पर आया, तबसे उसने मानों अपने कुलाचारका नाश कर दिया था। उसने दानशाला जलवा दी थी और याचकोंको पिटवाकर निकलवा दिया था। धन संचय करने के अतिरिक्त उसे और कोई काम ही न था।

एक दिन इल्लीस राजासे भेंट करके घर लौट रहा था। इतनेमें उसने मार्गमें देखा कि एक थका हुआ व्यक्ति बैठा मद्य पी रहा है और बीच बीचमें दुर्गन्धयुक्त सूखी मछली खाकर बहुत तृप्त हो रहा है। यह घृणित दृश्य देखकर इल्लीसके मनमें भी मद्य पीनेकी इच्छा हुई। पर उसने सोचा कि यदि मैं मद्य पीऊँगा, तो घरके और लोगोंको भी मद्य देना पड़ेगा,

जिससे धनका नाश होगा। इसलिये वह अपनी इच्छाको मन ही मन दबाकर वहाँसे चला गया।

पर इल्लीसकी मद्य पीनेकी इच्छा अधिक समय तक न रुक सकी। उसका शरीर पुरानी रूईकी तरह पीला पड़ गया और नसें दिखाई पड़ने लगीं। वह अपने शयनागारमें जाकर मंच पर लेट गया। उसकी स्त्रीने उसे उस अवस्थामें देखकर हाथसे उसकी पीठ सुहलाते हुए पूछा—"क्या आज आपका शरीर अच्छा नहीं है?" इल्लीसने कहा—"आज मेरी मद्य पीनेकी इच्छा है। पर यदि मैं मद्य पीऊँगा, तो घरके और लोगोंको भी मद्य देना पड़ेगा। इसी लिये मैं चिन्तित हूँ।" उसकी स्त्रीने कहा—"यदि आप कहें, तो मैं घरमें उतना ही मद्य बना दूँ जितना केवल आप पी सकते हों।" इल्लीसने कहा—"यदि तुम घरमें मद्य बनाओगी, तो लोग देख लेंगे। किसी दूसरे स्थानसे यहाँ मद्य लाकर पीना भी असंभव है।" अंतमें बहुत कुछ सोच विचार-कर उसने एक रुपया निकाला और बाजारसे मद्य मँगवाया और और एक दासके कंधे पर बैठकर नगरके बाहर चला गया। वहाँ वह नदीके तट पर एक झाड़ीके पास जा बैठा। वहाँ पहुँच कर उस दासको वहाँसे विदा कर दिया और आप वहीं बैठकर मद्य पीने लगा।

इल्लीसके पिताने अपने दान-पुण्य आदिके फलसे देवलोकमें शक्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया था। इल्लीस जब मद्य-पान करने लगा, तब शक्रने सोचा कि जरा देखना चाहिए कि नर-लोकमें मैं दानव्रतका जिस प्रकार पालन करता था, उसका पालन इस समय भी होता है या नहीं। वहीं बैठे बैठे उन्होंने जान

लिया कि मेरे कुलांगार पुत्रने कुलाचारका नाश करके दानशाला जलवा दी है, याचकोंको पिटवाकर निकलवा दिया है और वह इतना कृपण हो गया है कि दूसरोंको भी कुछ अंश देनेके भयसे एक झाड़ीके नीचे अकेला बैठकर मद्यपान कर रहा है। इसपर शक्रको बहुत ही दुःख हुआ और उन्होंने संकल्प किया कि मैं अभी भूतल पर जाऊँगा और वहाँ जाकर ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिसमें मेरे पुत्रकी मति पलट जाय, वह समझ जाय कि कैसे कर्मोंका क्या फल होता है, और पुण्य-कृत्य करके देवत्व प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाय।

उसी समय शक्र भूतल पर उतर आए और मनुष्य बनकर उन्होंने बिल्कुल इल्लीसका रूप धारण किया। वे उसी प्रकार लँगड़े, उसी प्रकार कुबड़े और उसी प्रकार भेंगे बने। यहाँ तक कि इल्लीसमें और उनमें आकार-प्रकारका कोई अन्तर न रह गया। उन्होंने उसी वेशसे वाराणसीमें प्रवेश किया और राजद्वार पर पहुँचकर राजाके पास अपने आनेका समाचार भेजा। राजाकी अनुमति पाकर वे राजमण्डपमें पहुँचे और राजाको अभिवादन करके उनके सामने खड़े हो गए।

उन्हें देखकर राजाने पूछा—"सेठ जी, आप इस असमयमें कैसे आए?" श्रेष्ठी रूपी शक्रने कहा—"महाराज, मेरे पास अस्सी करोड़ स्वर्णमुद्राएँ हैं। वे सब आप कृपया मँगाकर अपने भाण्डारमें रख लें।" राजाने कहा—"मैं वह धन क्यों मँगवा लूँ? मेरे पास तो उसकी अपेक्षा बहुत अधिक धन है।" शक्रने कहा—"यदि आप वह धन न लेना चाहते हों, तो मुझे आज्ञा दीजिए; मैं जिस प्रकार चाहूँगा, उस

प्रकार उसे दान करूँगा।" राजाने कहा—"हाँ हाँ, अवश्य कीजिए।" शक्र "जो आज्ञा" कहकर और राजाको प्रणाम करके इल्लीसके घर पहुँचे। उन्हें देखकर चारों ओरसे सेवक दौड़ आए। उनके इल्लीस न होनेके सम्बन्धमें किसीको कोई सन्देह न हुआ। उन्होंने देहलीज पर रुककर दरबानको बुलाया और कहा—"देखो, मेरे ही रूप रङ्गका यदि और कोई व्यक्ति आवे और यह कहकर घरमें घुसना चाहे कि यह घर मेरा है, तो उसे घरमें न घुसने देना और धक्के देकर निकाल देना।" इसके उपरान्त शक्र उस प्रासादमें जाकर शयनागारमें एक आसन पर जा बैठे और इल्लीसकी स्त्रीको बुलाकर हँसते हुए कहने लगे—"आओ, आजसे हम लोग दानशील हो जयँ।"

शक्रकी यह बात सुनकर इल्लीसकी स्त्री, पुत्र, कन्या, दास, दासी सभीने सोचा कि आज तक तो कभी इसकी इच्छा एक कौड़ी भी दान करनेकी न हुई। जान पड़ता है कि आज मद्य पीनेके कारण इसका जी खुल गया है। इसी लिये आज यह कुछ दान-पुण्य करना चाहता है। इल्लीसकी स्त्रीने उत्तर दिया—"प्रभु, यह धन आपका ही है। इसमेंसे आप जितना चाहें, उतना दान कर सकते हैं।" शक्रने कहा—"तुरन्त एक भेरीवादकको बुलाकर कह दो कि वह सारे शहरमें जाकर इस बातकी घोषणा कर आवे कि जो लोग सोना, चाँदी, हीरा, मोती आदि लेना चाहते हों, वे तुरन्त इल्लीस श्रेष्ठीके घर पर आवें।" इल्लीसकी स्त्रीने तुरन्त इस बातकी व्यवस्था कर दी और थोड़ी ही देरमें हजारों

आदमी आकर इल्लीसके द्वार पर खड़े हो गए। उस समय शक्रने अपना वह भाण्डार खोल दिया जिसमें सातों प्रकारके रत्न थे; और जो लोग आए थे, उनसे कहा—"मैंने यह धन तुम लोगोंको दान कर दिया। इसमेंसे जिसके जीमें जितना आवे, वह उतना उठा ले जाय।" यह बात सुनते ही सब लोग यथा शक्ति उठा उठाकर आँगनमें रत्नोंका ढेर लगाने लगे और तब सब लोग रत्नोंसे अपने अपने पात्र भरकर वहाँसे चले गए।

जो लोग वहाँ रत्न लेने आए थे, उनमेंसे एकने इल्लीसका एक रथ निकालकर बाहर खड़ा कर लिया था और उसपर उसने रत्न आदि लाद लिए थे। गोशालासे एक बैल लाकर उसने उसी रथमें जोता और उसे हाँकता हुआ नगरसे निकलकर वह राजपथ परसे होकर चलने लगा। इल्लीस जिस झाड़ीमें बैठा हुआ मद्यपान कर रहा था, जब वह व्यक्ति उस झाड़ीके पास पहुँचा, तब इस प्रकार इल्लीसका गुण-कीर्तन कर रहा था—"ईश्वर करे, हमारे इल्लीस सेठको सौ वर्षोंकी आयु हो। आज उसने मुझे जितना दान दिया है, उतनेमे तो मैं आजन्म सुखसे बैठकर खा सकूँगा। यह बैल भी उसीका है, यह रथ भी उसीका है और इसपर लदे हुए ये रत्न आदि भी उसीके हैं। न तो मेरी माताने ही यह धन मुझे दिया है और न मेरे पिताने ही।"

उस व्यक्तिकी बातें सुनकर इल्लीस मनमें बहुत डरा। वह सोचने लगा कि यह बात क्या है। यह मनुष्य मेरा नाम ले लेकर इतनी बातें कह गया। क्या राजाने आज मेरी सारी सम्पत्ति प्रजामें लुटवा दी? वह तुरन्त उस झाड़ीसे बाहर निकल

आया। बाहर आकर उसने देखा कि सचमुच रथ भी मेरा ही है और बैल भी मेरा ही। उसने झपटकर बैलका रस्सा पकड़ लिया और बिगड़कर उस व्यक्तिसे कहा—"क्यों रे धूर्त, तू मेरा रथ और बैल कहाँ लिए जाता है ?" वह व्यक्ति भी रथ परसे कूद पड़ा और बोला—"तू स्वयं धूर्त है जो ऐसी बातें करता है ! हमारा इल्लीस श्रेष्ठी सारे नगरनिवासियोंको दान दे रहा है। इस बीचमें बोलनेवाला तू कौन है !" इतना कहकर उसने इल्लीसके मस्तक पर तानकर एक मुक्का मारा और अपना रथ हाँक ले चला। मुक्केके आघातसे इल्लीस गिर पड़ा था। उसके चले जाने पर वह काँपता हुआ उठा और शरीरकी धूल पोंछता हुआ फिर उस रथके पीछे दौड़ा। थोड़ी दूर जाने पर उसने रथ पकड़ लिया। वह व्यक्ति फिर रथ परसे उतर पड़ा और इल्लीसके सिरके बाल पकड़कर और उसे भूमि पर पटककर खूब मारने लगा; और अच्छी तरह मार पीटकर फिर रथ पर चढ़कर चलता हुआ।

मार खानेसे इल्लीसका नशा हरन हो गया। वह काँपता हुआ घरकी ओर चला। मार्गमें उसे बहुत से लोग मिलते थे जो उसका धन लिए जाते थे। वह एक एकको रोककर उनसे पूछता था—"क्यों भाई, यह क्या बात है ! क्या आज राजाने आज्ञा दी है कि सब लोग मेरा भाण्डार लूट लें ?" पर वह जिससे पूछता था, वही उसे धक्का देकर गिरा देता था और आप अपना रास्ता लेता था। जगह जगह मार खानेके कारण उसका सारा शरीर लहू लुहान हो गया था। जब वह अपने घर पहुँचकर अन्दर जाने लगा, तब द्वारपालने

उसे झिड़ककर कहा—"कहाँ जाता है बे धूर्त ?" और उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। इल्लीसकी समझमें ही न आता था कि यह क्या हो गया। उसने सोचा कि अब राजाकी शरणमें जानेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यह सोचकर वह राजद्वार पर जा पहुँचा और जोरसे यह कह कह-कर चिल्लाने लगा—"दुहाई महाराजकी ! मैंने आपका क्या अपराध किया है जो आपने लोगोंको मेरा सर्वस्व लूट लेनेकी आज्ञा दी है।"

राजाने कहा—"महाश्रेष्ठी ! मैं तुम्हारा सर्वस्व लूटनेकी आज्ञा क्यों देने लगा ! अभी तो तुम्हींने आकर मुझसे कहा था कि मेरा सब धन अपने भाण्डारमें रखवा लीजिए। पर जब मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी, तब तुमने कहा कि अब मैं उसे जैसे चाहूँगा, वैसे दान करूँगा। इसके उपरान्त तुम्हींने भेरी बजवाकर घोषणा कराई और उसीके अनुसार नगरनिवासी तुम्हारे घर जाकर रत्न आदि ले आए।" इल्लीसने कहा—"महा-राज, मैंने तो कभी आपके समीप आकर यह प्रार्थना नहीं की। मैं जैसा कृपण हूँ, वह तो आपको विदित ही है। मैं तो कभी तिनकेकी नोकसे भी कभी कोई चीज दान नहीं करता। जो मेरा धन इस प्रकार लुटा रहा है, आप कृपाकर इसी समय उसे बुलावें और उसका विचार करें।"

राजाने श्रेष्ठी रूपी शक्रको बुलाया। उनके आने पर सब लोगोंने देखा कि आकार प्रकार आदिमें इल्लीसमें और उनमें तनिक भी अन्तर नहीं है। इसलिये राजा या उनके मन्त्रियोंमें-से कोई यह स्थिर न कर सका कि इनमेंसे वास्तविक इल्लीस

कौन है। इल्लीस कहता था—"महाराज, मैं ही इल्लीस हूँ।" राजाने कहा—"मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता। क्या और कोई निश्चयपूर्वक यह बतला सकता है कि तुम दोनोंमें वास्तविक इल्लीस कौन है?" इल्लीसने कहा—"मेरी भार्या ही इसका निर्णय कर सकती है।" पर उसकी भार्याने शक्रको ही अपना पति बतलाया और वह उसीके पास जाकर खड़ी हो गई। इसके उपरान्त इल्लीसके पुत्र, कन्या, दास, दासियों आदिसे भी वही प्रश्न किया गया और सबने एक स्वरसे शक्रको ही श्रेष्ठी बतलाया। तब इल्लीसने मनमें सोचा कि मेरे सिरमें बालोंके अन्दर एक मसा है, जिसे मेरे नापितके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। इसलिये अब उसी नापितको बुलवाकर इस बातका निर्णय कराना चाहिए। यह सोचकर उसने राजासे नापितको बुलवानेकी प्रार्थना की।

उस समय बोधिसत्व ही इल्लीसके नापित थे। राजाकी आज्ञासे वे भी बुलवाए गए। उनसे पूछा गया—"क्या तुम बतला सकते हो कि इन दोनोंमेंसे वास्तविक इल्लीस कौन है?" बोधिसत्वने उत्तर दिया—"महाराज, मैं इन दोनोंके सिर देखकर यह बात बतला सकता हूँ।" इसपर शक्रने तुरन्त अपने सिरमें उसी स्थान पर एक मसा उत्पन्न कर लिया। बोधिसत्वने दोनोंके सिर देखकर कहा—"महाराज, इन दोनोंके सिरमें एक ही प्रकारका मसा है। इस कारण मैं भी यह नहीं कह सकता कि इनमेंसे वास्तविक श्रेष्ठी कौन है और छद्मवेशी कौन है।"

बोधिसत्वकी बात सुनते ही इल्लीस धनके शोकके कारण काँपता हुआ गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। उस समय

शक्रने आकाशमें उठकर कहा—"महाराज, मैं इल्लीस नहीं हूँ।" इधर लोगोंने इल्लीसके मुँह और शरीर पर पानीके छींटे देकर उसे सचेत किया। होश आने पर वह उठकर खड़ा हुआ और उसने देवराज शक्रको प्रणाम किया। उस समय शक्रने उससे कहा—"सुनो इल्लीस, यह सारा वैभव मेरा था, तुम्हारा नहीं था। मैं तुम्हारा पिता हूँ और तुम मेरे पुत्र हो। मैंने जीवन कालमें जो दान-पुण्य किया था, उसके कारण इस समय मुझे शक्रत्व प्राप्त हुआ है। परंतु तुमने अपने कुलाचारका नाश कर दिया; यह जाना ही नहीं कि दान, पुण्य और धर्म किसे कहते हैं। तुमने केवल कृपणता सीखी; दानशाला बन्द करा दी; याचकोंको पिटवाकर निकाल दिया और सब काम छोड़कर केवल धन संचित करना आरंभ किया। अब न तो तुम इस धनका भोग कर सकते हो और न दूसरा कोई कर सकता है। अब इसका एक कण भी कोई स्पर्श नहीं कर सकता। यदि तुम इस बातकी प्रतिज्ञा करो कि तुम दानशाला फिर बनवा दोगे और दीन दुःखियोंका पोषण करते रहोगे, तो तुम्हारी इन सब बातोंकी गिनती सत्कार्योंमें होगी। नहीं तो तुम्हारा यह सारा धन अंतर्हित हो जायगा, तुम्हारे ऊपर वज्रपात होगा और तुम मर जाओगे।"

प्राणभयसे इल्लीस बोल उठा—"मैं आजसे ही दानशील होता हूँ।" शक्रने उसकी बात मानकर आकाशमें ही बैठे बैठे उसे धर्मोपदेश दिया और शील आदिकी शिक्षा देकर वे अपने स्थानको चले गए। इसके उपरान्त इल्लीस जब तक जीता रहा, तब तक बराबर दान पुण्य करता रहा और मरने पर देवलोक को गया।

भीमसेन जातक

प्राचीन कालमें बाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधि-सत्वने किसी निगम * ग्राममें एक उदीच्य ब्राह्मणके घरमें जन्म लिया था। वयस्क होने पर उन्होंने तक्षशिलाके एक प्रसिद्ध आचार्यसे शिक्षा पाई थी। वे तीनों वेदों और अठारहों विद्या-ओंकी शिक्षा पाकर समस्त शास्त्रोंके सुपण्डित हुए थे। लोग उन्हें "चुल्ल धनुर्ग्रह पंडित" कहा करते थे।

बोधिसत्वने जो कुछ विद्या प्राप्त की थी, उसका कार्य रूपमें उपयोग करनेके लिये वे तक्षशिला छोड़कर अन्ध्र राज्यमें गए। बोधिसत्वके जिस जन्मकी यह बात है, उस जन्ममें वे कुछ कुबड़े और नाटे थे। उन्होंने सोचा कि यदि मैं किसी राजाके सामने जाऊँगा, तो वह अवश्य ही मुझसे कहेगा कि तुम्हारे जैसे बौनेसे क्या काम हो सकेगा। इसलिये किसी लंबे चौड़े आदमीको ढूँढकर अपना मुखपात्र † बनाना चाहिए। उसकी छायामें रहने-से जीविका-निर्वाहमें अधिक सुभीता होगा। यह निश्चय करके वे ऐसे पुरुषको ढूँढते ढूँढते तन्तुवाय पल्लीमें पहुँचे और एक बहुत ही हृष्ट पुष्ट तन्तुवायको देखकर उन्होंने उससे पूछा—"क्यों भाई, तुम्हारा नाम क्या है?" उसने कहा—"मेरा नाम भीमसेन है।" बोधिसत्वने कहा—"तुम्हारा शरीर कितना विशाल और

---

* निगम ग्राम = वह छोटे गाँव जिसमें हाट बाजार भी हों।

† मुखपात्र = वह जिसकी छाया या ओटमें रहकर कोई काम किया जाय।

सुन्दर है। तुम यह तन्तुवायका व्यवसाय क्यों करते हो?" उसने उत्तर दिया—"बिना इसके मेरा काम जो नहीं चलता।" बोधिसत्वने कहा—"अब तुम्हें यह काम करनेकी आवश्यकता नहीं। मैं सारे जम्बू द्वीपमें अद्वितीय धनुर्धर हूँ। यदि मैं किसी राजाके पास जाऊँगा, तो वह मेरा आकार देखकर समझेगा कि मैं किसी कामके योग्य नहीं हूँ। अतः तुम मेरे साथ चलो। राजाके पास पहुँचकर मैं तुमको ही महा धनुर्धर बतलाऊँगा। इस पर राजा तुम्हारे लिये कुछ वेतन नियत कर देंगे और बतला देंगे कि तुम्हें क्या करना होगा। मैं तुम्हारे पीछे पीछे रहूँगा; और जब जो कुछ करना होगा, तब वह मैं तुमको बतला दूँगा। इस प्रकार तुम्हारी आड़में मेरी भी जीविका लग जायगी। मैं जो कुछ कहता हूँ, तुम वही करो। इससे हम दोनों सुख-पूर्वक रह सकेंगे।" भीमसेनने कहा—"अच्छी बात है, ऐसी ही सही।"

इसके उपरान्त बोधिसत्व अपने साथ भीमसेनको लेकर वाराणसी पहुँचे। उस समय भीमसेन आगे था, और बोधिसत्व उसके बाल-भृत्यके रूप में थे। राजद्वार पर पहुँचकर बोधिसत्वने भीमसेनके द्वारा राजाके पास अपने आनेका समाचार भिजवाया।

राजाकी आज्ञा पाकर बोधिसत्व और भीमसेन दोनों सभा-मण्डपमें पहुँचे और राजाको प्रणाम करके खड़े हो गए। राजाने पूछा—"तुम लोग किस लिये आए हो?" भीमसेन कहा—"महाराज, मैं धनुर्धर हूँ। समस्त जम्बू द्वीपमें धुनर्वेदका मेरे समान ज्ञाता और कोई नहीं है।" राजाने पूछा—"यदि तुम मेरे यहाँ रहोगे, तो क्या वेतन लोगे?" भीमसेनने कहा—"प्रति पक्ष एक हजार मुद्रा।" राजाने पूछा—"तुम्हारे साथ यह कौन

है ?" भीमसेनने कहा—"यह मेरा बाल-सेवक है।" राजाने कहा—"अच्छा मैं तुम्हें अपने यहाँ नियुक्त करता हूँ।"

इस प्रकार भीमसेन राजाके यहाँ नौकर हो गया और बोधिसत्व उसके सब कार्य करने लगे। उसी समय काशी राज्यके किसी वनमें एक बाघ बहुत उपद्रव मचा रहा था। उसके कारण एक बहुत चलता हुआ रास्ता बिल्कुल बन्द हो गया था और बहुत से लोगोंके प्राण जा चुके थे। जब राजाने यह समाचार सुना, तब उन्होंने भीमसेनको बुलाकर पूछा—"क्या तुम उस बाघको पकड़ सकोगे ?" भीमसेनने कहा—"महाराज, यदि मैं बाघको भी न पकड़ सका, तो फिर मैं धनुर्धर ही काहेका ठहरा !" राजाने उसे पाथेय देकर बाघ पकड़नेके लिये भेज दिया।

भीमसेनने घर जाकर यह बात बोधिसत्वसे कही। बोधिसत्वने कहा—"अच्छी बात है। जाओ, बाघ पकड़ लाओ।" भीमसेनने पूछा—"तुम चलोगे या नहीं ?" बोधिसत्वने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो नहीं जाऊँगा। पर तुम्हें एक उपाय बतला देता हूँ।" भीमसेनने पूछा—"वह उपाय क्या है ?" बोधिसत्वने कहा—"तुम चटपट उस बाघके रहनेकी जगहमें न घुस जाना। किसी जनपदमेंसे हजार दो हजार तीरन्दाज एकत्र करना। जब देखो कि बाघ उठा है, तब दौड़कर एक झाड़ीमें छिप जाना और औंधे होकर लेट जाना। उधर वे सब तीरन्दाज बाघको मार डालेंगे। जब तुम देख लो कि बाघ मर गया है, तब झाड़ीमेंसे निकल आना। वहाँसे निकलते समय दाँतसे कोई लता तोड़कर हाथमें ले लेना और

उस मरे हुए बाघके पास पहुँचकर लोगों पर खूब बिगड़ना कि—'इस बाघको किसने मार डाला! मैंने तो सोचा था कि इसे जीवित ही पकड़ लूगाँ और इसी लतामें बाँधकर साधारण गौ–बैलकी तरहसे इसे खींचता हुआ राजाके पास ले जाऊँगा। इसी लिये मैं लता लाने झाड़ीमें चला गया था। पर मेरे लता लानेसे पहले ही तुम लोगोंने इसे मार डाला। बताओ, किसने इसे मारा।' तुम्हारी इस प्रकारकी बातें सुनकर सब लोग डर जायँगे और कहेंगे—'प्रभु, आप कृपा करके यह बात राजासे मत कहिएगा।' और कदाचित् वे लोग तुमको थोड़ा बहुत धन भी देंगे। राजा समझेंगे कि तुम्हींने बाघको मारा है। अतः वे भी तुम्हें बहुत सा धन पुरस्कारमें देंगे।"

भीमसेनने कहा—"वाह, यह तो बहुत अच्छी बात है।" इसके उपरान्त उसने बोधिसत्वके परामर्शके अनुसार सब काम किए जिससे वह बाघ मारा गया और रास्ता खुल गया। बहुत से लोगोंको अपने साथ लेकर वह वाराणसी पहुँचा और राजाकी सेवामें उपस्थित होकर बोला—"महाराज, बाघ मार डाला गया। अब उस वनमें पथिकोंके लिये और किसी प्रकारके उपद्रवकी सम्भावना नहीं है।"

एक दिन समाचार आया कि किसी राजपथमें एक भैंसा बहुत उपद्रव मचा रहा है। राजाने भीमसेनको बुलाकर भैंसा मारनेके लिये भेजा। इस बार भी उसने बोधिसत्वके परामर्शके अनुसार चलकर कौशलसे भैंसेको मार डाला। लौटने पर राजाने फिर उसे बहुत सा धन पुरस्कार-स्वरूप दिया।

इस प्रकार धीरे धीरे भीमसेनके पास बहुत सा धन हो गया। उस धनके मदसे मत्त होकर वह बोधिसत्वकी अवज्ञा करने लगा। अब वह उनके परामर्शकी उपेक्षा करने लगा और कहने लगा—"तुम्हारे बिना भी मेरा काम चल जायगा। क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हीं आदमी हो, और कोई आदमी ही नहीं है?"

इसके कुछ ही दिनोंके उपरान्त एक बार एक शत्रु राजाने वाराणसी पर आक्रमण करके ब्रह्मदत्तसे कहला भेजा—"या तो राज्य छोड़ो या युद्ध करो।" ब्रह्मदत्तने उसी भीमसेनको उस राजाके साथ युद्ध करनेको भेजा। भीमसेन सिरसे पैरतक सैनिकके वेशमें सुसज्जित होकर एक अच्छे हाथी पर सवार हुए। बोधिसत्वको आशंका हुई कि कहीं युद्धमें भीमसेन मारा न जाय; इसलिये वे भी सब प्रकारसे तैयार होकर हाथी पर उनके पीछे बैठ गए। बहुत से सैनिकोंसे घिरकर वह हाथी नगरके बाहर निकला और शत्रु राजाकी सेनाके सामने जा पहुँचा। परन्तु रणभेरीका शब्द सुनते ही भीमसेन मारे भयके काँपने लगा। बोधिसत्वने कहा—'यदि तुम इस हाथीकी पीठ परसे गिर पड़े, तो अवश्य ही मारे जाओगे।" उसे गिरनेसे बचानेके लिये उन्होंने रस्सीसे कसकर बाँध दिया। किन्तु रणभूमिका दृश्य देखकर मृत्युके भयसे भीमसेनने उस हाथीकी पीठ पर ही मल त्याग करके उसे दूषित कर दिया। उस समय बोधिसत्वने कहा—"वाह! तुम्हारी पिछली बातोंसे इस बातका मेल कैसे मिलेगा? उस समय तो तुम अपने आपको बहुत बड़ा वीर बतलाते थे;

और अब तुमने हाथीकी पीठ पर मल त्याग कर दिया !" इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"कैसे आश्चर्यकी बात है कि उस समय तो तुम इतना गर्व करते थे; और यहाँ रण-क्षेत्रमें आकर तुमने मल-त्याग कर दिया। तुम पहले जो कुछ कहा करते थे और अब तुमने जो कुछ किया है, उन दोनोंमें मुझे कुछ भी सामंजस्य नहीं दिखाई देता।"

भीमसेनको इस प्रकार भर्त्सना करके बोधिसत्वने उसे आश्वासन देनेके लिये कहा—"तुम डरो मत। मेरे रहते किसीकी शक्ति नहीं है जो तुम्हें मार सके।" यह कहकर उन्होंने भीमसेनको हाथीकी पीठ परसे उतार दिया और कहा—"तुम स्नान करके घर जाओ।"

इसके उपरान्त उन्होंने संकल्प किया कि अब मैं यशस्वी होऊँगा और वे युद्धमें प्रवृत्त हुए। सिंहकी भाँति गरजते हुए उन्होंने शत्रुके व्यूहको भेद डाला; शत्रु राजाको जीते जी पकड़कर कैद कर लिया और वाराणसीके राजाके पास ले आए। उन्हें देखकर ब्रह्मदत्त बहुत ही सन्तुष्ट हुए और उन्होंने बोधिसत्वको बहुत कुछ पुरस्कार दिया। तबसे सारे जम्बू द्वीपमें चुल्ल धनुर्ग्रह पण्डितके यशके गीत गाए जाने लगे। बोधिसत्वने भीमसेनको बहुत सा धन देकर विदा किया और आजन्म दान पुण्य आदि करते हुए समय पर वे अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकको चले गए।

कुहक जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें किसी गाँवमें एक जटाधारी धूर्त तपस्वी रहा करता था। उस गाँवके एक जमींदारने उसके रहनेके लिये वनमें एक पर्णशाला बनवा दी थी और उसके भोजनके लिये वह अपने घरसे नित्य अच्छे अच्छे पदार्थ भेजा करता था। वह जमींदार इस धोखेमें था कि यह तपस्वी बहुत ही शीलवान् है; इसलिये उसने डाकुओंके भयसे अपनी एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ उसी पर्णशालामें गाड़ दीं और तपस्वीसे कहा—"प्रभु, आप जरा इसका भी ध्यान रखियेगा।" तपस्वीने कहा—"बेटा, हम प्रव्राजक हैं। हमसे इस प्रकारकी बातें कहनेकी क्या आवश्यकता है। पराए द्रव्यके लिये हम लोग कभी लोभ नहीं करते।" जमींदारने उस तपस्वीकी बात पर विश्वास कर लिया और उसे साधुवाद देकर वह अपने घर चला गया।

अब वह धूर्त तपस्वी अपने मनमें सोचने लगा कि इतनी स्वर्ण मुद्राओंसे तो एक आदमी भली भाँति जन्म भर खा पहन सकता है। इसके कुछ दिनोंके उपरान्त एक दिन उसने वे मुद्राएँ वहाँसे निकाल लीं और मार्गमें एक ओर एक जगह गाड़ दीं और फिर अपनी पर्णशालामें आकर पहलेकी भाँति रहने लगा। दूसरे दिन जब वह तपस्वी उस जमींदारके यहाँ भोजन करने गया, तब उससे कहने लगा—"पुत्र, मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारा अन्न खाया है। एक स्थान पर

बहुत दिनों तक रहनेसे मनुष्योंसे संसर्ग हो जाता है; और मनुष्योंका संसर्ग प्रव्राजकके लिये निषिद्ध है। इसलिये अब मैं कहीं और जाना चाहता हूँ।" वह जमींदार उससे रहनेके लिये बहुत अनुरोध करने लगा, पर किसी प्रकार उसका संकल्प न बदल सका। अन्तमें उसने कहा—"प्रभु, यदि आपकी और कहीं जाने की नितान्त इच्छा हो, तो आप जा सकते हैं।" इसके उपरान्त वह जमींदार गाँवके किनारे तक आकर उसे पहुँचा गया।

कुछ दूर जाने पर तपस्वीने सोचा कि अब जमींदारको कुछ ठगते भी चलो। वह अपनी जटामें कुछ तृण रखकर लौटा और फिर उस जमींदारके घर गया। जमींदारने पूछा—"महाराज, आप लौट क्यों आए?" उसने उत्तर दिया—"*तुम्हारी छाजनका एक तिनका मेरी जटामें लगकर मेरे साथ* चला गया था। प्रव्राजकोंके लिये अदत्त दान लेना निषिद्ध है; इसी लिये मैं वह तिनका तुमको देने आया हूँ।" जमींदारने कहा—"आप वह तिनका फेंक दीजिए और चले जाइए।" इसके उपरान्त वह जमींदार मन ही मन सोचने लगा—"वाह, इन महात्माको धर्मका कितना सूक्ष्म ज्ञान है! ये बिना दिए पराया तिनका तक स्पर्श नहीं करते।" तपस्वीके चरित्र पर मुग्ध होकर उसने उन्हें प्रणाम करते हुए विदा किया।

उसी अवसर पर बोधिसत्व कहींसे माल लेकर लौट रहे थे और उस गाँवमें आ पहुँचे थे। तपस्वीकी बात सुनकर उनको सन्देह हुआ कि यह धूर्त है और अवश्य ही जमींदारको ठग रहा है। उन्होंने जमींदारसे पूछा—"क्यों जी, तुमने

इस तपस्वीको कभी कुछ धन रखनेके लिये दिया था ?" जमींदारने कहा—"हाँ, इनके पास मेरी एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ थीं।" बोधिसत्वने कहा—"तो फिर अभी जाकर तुम वे मुद्राएँ ले आओ।" जमींदारने उस पर्णशालामें जाकर देखा कि मुद्राएँ वहाँ नहीं हैं। वह दौड़ा हुआ बोधिसत्वके पास आया और बोला—"वहाँ तो मुद्राएँ नहीं मिलीं।" बोधिसत्वने कहा—"तुम्हारा धन और कोई नहीं ले गया है, वह धूर्त तपस्वी ही ले गया है। चलो, उसे ढूँढकर पकड़ें।" दोनों आदमी दौड़े हुए गए और थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने उसे पकड़ लिया और उससे वह धन ले लिया। वह धन देखकर बोधिसत्वने कहा—"सौ स्वर्ण मुद्राएँ तो पचा लीं और तिनका लेनेमें पाप होता है!" इसके उपरान्त उन्होंने उसे भर्त्सना करते हुए नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"तुमने कैसी विश्वासके योग्य बात कही थी कि अदत्त दान लेना प्रव्राजक का धर्म नहीं है! पापके भयसे तुम तृण तक स्पर्श न करते थे; तब तुमने इस प्रकार छलसे सौ मुद्राएँ क्यों ले लीं ?"

इस प्रकार भर्त्सना करके बोधिसत्वने उस भण्ड तपस्वीसे कहा—"सावधान! अब कभी किसीके साथ इस प्रकार धूर्त्तता न करना।" इसके उपरान्त बोधिसत्व यथा समय अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये इहलोक त्यागकर परलोक चले गए।

महासार * जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने सब विद्याओंमें पारंगत होकर उनके अमात्यका पद प्राप्त किया था। एक बार राजा अपने साथ बहुत से अनुचरोंको लेकर विहार करनेके लिये उद्यानमें गए थे। वहाँ घूमते फिरते उन्हें जल-विहार करनेकी इच्छा हुई और उन्होंने सरोवरमें उतरकर रानियोंको बुला लानेके लिये आदमी भेजा। रानियोंने आकर अपने मस्तक और गलेसे अपने अपने आभूषण उतारे और पेटियोंमें रख दिए; और वे पेटियाँ दासियोंको सौंपकर वे भी सरोवरमें उतरीं।

उस समय एक बँदरिया एक वृक्षकी शाखा पर बैठी थी। जिस समय प्रधान महिषीने अपने आभरण उतारकर पेटीमें रखे थे, उस समय उसने देख लिया था। उसकी इच्छा हुई कि महिषीका हार मैं अपने गलेमें पहनूँ। वह इस बातकी प्रतीक्षा करने लगी कि दासीका ध्यान कहीं इधर उधर हो, तो अपनी इच्छा पूर्ण करूँ। दासी पहले तो कुछ देर तक सावधान रहकर आभूषण देखती रही; पर थोड़ी देरमें नींद आनेके कारण वह ऊँघने लगी। बँदरियाने जब देखा कि दासी ऊँघ रही है, तब वह चट वृक्ष परसे उतरी और गजमुक्ताका हार लेकर फिर वृक्ष पर जाकर शाखाओंकी ओटमें छिप बैठी। इसके उपरान्त उसे भय

---

* महासार = महामूल्य या बहुमूल्य।

हुआ कि कहीं और कोई बन्दर इसे न देख ले; इसलिये उसने वह हार वृक्षके कोटरमें रख दिया और इस प्रकार मुँह बनाकर वह उसका पहरा देने लगी कि मानों इस सम्बन्धमें वह कुछ जानती ही नहीं।

उधर जब दासीकी आँख खुली, तब उसने देखा कि हार नहीं है। वह भयके मारे काँपने लगी। और कोई उपाय न देखकर वह चिल्ला उठी—"अरे कोई दौड़ो! महिषीका हार लेकर चोर भाग गया!" उसकी बात सुनकर चारों ओरसे पहरेदार दौड़ आए और दासीने जो कुछ कहा था, उन्होंने जाकर राजासे कह दिया। राजाने कहा—"चोरको पकड़ो।" तदनुसार पहरेदार उद्यानसे बाहर निकलकर चारों ओर चोरको ढूँढने लगे। उसी समय किसी गाँवका एक निवासी कर देनेके लिये आ रहा था। जब उसने सुना कि राजाके पहरेदार "चोर चोर" चिल्ला रहे हैं, तब वह मारे भयके भाग चला। उसे भागते देखकर पहरेदारोंने सोचा कि यही चोर है। उन्होंने उसका पीछा किया और कुछ दूर जाकर उसे पकड़ लिया। उसे पकड़कर वे लोग मारने लगे और कहने लगे—"तूने इतना बहुमूल्य हार क्यों चुराया?"

देहातीने सोचा कि यदि मैं इस समय नहीं कहता हूँ कि मैंने हार चुराया है, तो मेरी जान नहीं बच सकती। ये लोग मुझे मारते मारते मार ही डालेंगे। इसलिये चोरीका अपराध स्वीकृत कर लेना ही ठीक है। यह सोचकर उसने कहा—"हाँ, हार मैंने चुराया तो है।" उसकी यह बात सुनकर पहरेदार उसे बाँधकर राजाके पास ले गए। राजाने उससे पूछा—"तूने यह

महामूल्यवान् हार चुराया है ?" उसने उत्तर दिया—"हाँ महाराज !" राजाने पूछा—"वह हार कहाँ है ?" उसने "कहा—"दुहाई महाराजकी ! मैं बहुत ही दरिद्र हूँ । हारकी कौन कहे, मैंने तो आज तक कभी आँखसे खाट या पलंग तक नहीं देखा । श्रेष्ठीने मुझसे कहा था कि वह हार ला दो । मैंने वह हार ले जाकर उन्हींको दे दिया । अब वह हार कहाँ है, यह वही बतला सकते हैं । मैं नहीं जानता ।" उसी समय राजाने श्रेष्ठीको बुलाकर पूछा—"तुमने इससे हार लिया है ?" श्रेष्ठीने कहा—"हाँ महाराज ।" राजाने पूछा—"वह कहाँ है ?" श्रेष्ठीने उत्तर दिया—"मैंने पुरोहित जीको दे दिया है ।" इसके उपरान्त जब राजाने पुरोहितको बुलाकर उनसे पूछा तो उन्होंने कहा—"मैंने गन्धर्वको दे दिया है ।" जब गन्धर्वसे पूछा गया, तब उसने कहा—"पुरोहित जीने मुझे हार तो अवश्य दिया था; पर मैंने वह हार अमुक वेश्याको दे दिया है ।" जब वह वेश्या आई और उससे पूछा गया, तब उसने कहा—"मुझे कोई हार नहीं मिला ।"

इस प्रकार इतने आदमियोंको बुलाने और उनसे पूछनेमें सन्ध्या हो गई । उस समय राजाने कहा—"अब आज समय नहीं रह गया । कल देखा जायगा ।" वे उन सब बन्दियोंको एक अमात्यके सपुर्द करके नगरको लौट गए ।

बोधिसत्व सोचने लगे कि हार तो गुम हुआ है उद्यानके अन्दरसे; और वह देहाती था उद्यानके बाहर । उद्यानके द्वार पर बहुत से पहरेदार भी थे । यह सम्भव नहीं है कि कोई उद्यानके अन्दरसे हार लेकर भागे और बाहर निकल जाय । चाहे भीतरसे हो और चाहे बाहरसे हो, यह हार किसी प्रकार

चोरी नहीं जा सकता। यह अभागा देहाती जो कहता है कि मैंने हार चुराकर श्रेष्ठीको दिया है, सो अपने आपको बचानेके लिये कह रहा है। श्रेष्ठीने सोचा कि यदि मैं पुरोहितके मत्थे मढ़ूँ, तो सहजमें मेरा छुटकारा हो सकता है। इसी लिये उसने पुरोहितका नाम ले दिया है। पुरोहित जीने सोचा कि कारागारमें यदि गन्धर्व भी साथ रहेगा, तो अच्छा आनन्द रहेगा। इसलिये उन्होंने गन्धर्वको मिला लिया है। और गन्धर्वने यह सोचा कि कारागारमें यदि एक स्त्री रहेगी, तो अच्छा मनोविनोद होगा; इसलिये उसने इस वेश्याको फँसाया है। इन्हीं सब बातोंका विचार करके उन्होंने सोचा कि इन पाँचोंमेंसे एक भी चोर नहीं है। उद्यानमें बहुत से बन्दर रहते हैं। उन्हींमेंसे किसीका यह काम है।

बोधिसत्वने यही सिद्धान्त निश्चित कर लिया और राजाके पास जाकर कहा—"महाराज, आप आज्ञा दीजिए कि सब चोर मेरे सपुर्द कर दिए जायँ, मैं स्वयं उन सब लोगोंसे इस विषयमें कुछ पूछूँगा। राजाने कहा—"यह बहुत ही अच्छी बात है। आप ही उन सब लोगोंकी परीक्षा कीजिए।" उस समय बोधिसत्वने अपने सेवकोंको बुलाकर आज्ञा दी कि पाँचों बन्दियोंको एक ही स्थानमें बन्द करके रख दो और चारों ओरसे उनपर पहरा बैठा दो। वे लोग आपसमें जो कुछ बातें करें, वह सब सुनते रहो और मुझसे आकर कहो। सेवक लोग तुरन्त उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये चले गए।

जब सब बन्दी एक स्थान पर बैठे, तब आपसमें बात चीत करने लगे। श्रेष्ठीने उस देहातीसे कहा—"क्यों रे धूर्त्त, तूने और

भी पहले कभी मुझे देखा था ? या मैंने कभी तुझे देखा था ? बता, तूने मुझे हार कब दिया था ?" देहातीने कहा—"सेठजी, इतना महामूल्यवान् हार कौन कहे, मैंने तो आज तक टूटी खाट भी अपनी आँखोंसे नहीं देखी। मैंने तो अपने आपको बचानेकी आशासे यह बात कही थी।" पुरोहित जीने कहा—"सेठजी, जो चीज स्वयं आपको इससे नहीं मिली, वह फिर आपने मुझे कैसे दी ?" श्रेष्ठीने उत्तर दिया—"मैंने सोचा था कि जब हम दोनों ही उच्च पदों पर हैं, तब आपको भी अपने साथ क्यों न मिला लूँ। जब दोनों मिल जायँगे, तब इस विपत्तिसे छूटनेका कोई उपाय निकल आवेगा।" गन्धर्वने पूछा—"क्यों पुरोहित जी, आपने मुझे कब हार दिया था ?" पुरोहितने उत्तर दिया—"भाई, मैंने सोचा था कि यदि तुम भी कारागारमें आ जाओगे, तो समय आनन्दसे बीतेगा। इसी लिये मैंने तुमको भी मिला लिया।" सबके अन्तमें वेश्याने कहा—"क्यों रे गन्धर्व, तूने कब मुझे हार दिया था ? क्या तू कभी मेरे पास आया था ? या मैं कभी तेरे पास गई थी ?" गन्धर्वने कहा—"मैंने भी तो यही सोचा था कि तुम्हारे साथ रहनेसे समय अच्छी तरह बीतेगा। इसी लिये मैंने तुम्हारा नाम ले दिया था।"

जब बोधिसत्वने अपने आदमियोंके मुँहसे ये सब बातें सुनीं, तब उन्हें निश्चय हो गया कि यह किसी चोरका काम नहीं है, बल्कि बन्दरोंका ही काम है। उन्होंने सोचा कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें वह बन्दर हार लौटा दे। उन्होंने पद्मबीजके कई हार बनवाए और कुछ बन्दरोंको पकड़वाकर उनमेंसे किसीके गलेमें, किसीके हाथमें और किसीके पैरमें वे

हार बँधवा दिए और उन सबको छोड़ दिया। जो बँदरिया वह मुक्ताहार ले गई थी, वह वहीं बैठी पहरा दे रही थी। बोधिसत्वने उद्यानमें रहनेवाले आदमियोंसे कह दिया—"तुम लोग उद्यानके सब बन्दरों पर दृष्टि रखो; और जिसके गलेमें मुक्ताहार देखो, उसे डरा धमकाकर वह हार ले लो।"

जिन बन्दरोंको पद्मबीजके हार पहनाए गए थे, वे इधर उधर घूमने लगे। उनमेंसे एक बँदरियाने उस बँदरियासे, जिसने हार उठाया था, जाकर कहा—"देखो, मैंने कैसा सुन्दर हार पहना है।" उसने कहा—"उहँ, यह कौन बहुत अच्छा हार है! यह तो पद्मबीजका है।" यह कहकर उसने अपना मुक्ताहार निकाला। पहरेदार उस बँदरियाको मारने दौड़े। उसने मारे भयके वह हार फेंक दिया। उन लोगोंने वह हार लाकर बोधिसत्वको दिया। बोधिसत्वने हार ले जाकर राजाको दिया और कहा—"महाराज, लीजिए मैं आपका हार ले आया हूँ। पाँचो आदमी निरपराध हैं। उद्यानकी एक बँदरिया वह हार उठा ले गई थी।" राजाने पूछा—"पण्डितवर, आपने यह किस प्रकार जाना कि यह हार बँदरिया उठा ले गई थी? और फिर किस प्रकार आपने उससे हार लिया?" बोधिसत्वने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सब बातें सुनकर राजाने प्रसन्न होकर उनकी बहुत प्रशंसा की और नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"संग्राममें सबसे आगे महावीरोंकी आवश्यकता होती है। मन्त्रणामें धीर पुरुषोंकी आवश्यकता होती है। आमोद प्रमोदके समय प्रसन्नचित्त मनुष्योंकी आवश्यकता होती है। पर जिस समय कोई कठिन बात आ पड़ती है और सूक्ष्म विचारकी

आवश्यकता होती है, उस समय केवल तीक्ष्ण बुद्धिवाले परिडतसे ही काम चलता है।"

इस प्रकार बोधिसत्वकी प्रशंसा करनेके उपरान्त राजाने उन पर सातों प्रकारके रत्नोंकी उसी प्रकार वर्षा की, जिस प्रकार मेघसे जलकी वर्षा होती है। इसके उपरान्त वे सदा उन्हींके उपदेशके अनुसार चलते रहे और पुण्य कृत्योंका अनुष्ठान करते हुए अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये उन्होंने शरीर त्याग किया।

विश्वासभाजन जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्व एक बहुत सम्पन्न श्रेष्ठी थे। जिस समय जंगलोंमें हरी हरी घास उगती थी, उस समय उनके गोपालक और भी सब गोपालकोंको अपने साथ लेकर जंगलमें जाया करते थे और वहाँ गौएँ चराते थे। बीच बीचमें वे दूध आदि लाकर बोधिसत्वको दे जाया करते थे। गौओंके चरने और रहनेकी जगहके पास ही एक सिंह रहा करता था। गौएँ सिंहसे इतना डरती थीं कि उनका दूध घट जाया करता था। एक दिन जब एक गोपालक घी लेकर आया, तब बोधिसत्वने उससे पूछा—"क्यों जी, यह घी इतना कम क्यों है ?" गोपालकने घी कम होनेका कारण बतला दिया। कारण सुनकर बोधिसत्वने कहा–"क्या तुम यह बतला सकते हो कि वह सिंह किसी प्राणी पर अनुरक्त है ?" गोपालकने कहा–"जी हाँ, वह एक मृगी पर अनुरक्त है।" बोधिसत्वने पूछा–"क्या तुम उस मृगीको पकड़ सकते हो ?" गोपालकने कहा–"जी हाँ, पकड़ सकता हूँ।" बोधिसत्वने कहा—"अच्छा तो तुम उस मृगीको पकड़ लो और उसके सिर से लेकर पैर तक सारे शरीर पर विष मल दो; और दो दिन तक उसे बाँध रक्खो। जब उसके शरीरका सारा विष अच्छी तरह सूख जाय, तब उसे छोड़ दो। सिंह स्नेहके कारण उसका शरीर चाटेगा, जिससे वह मर जायगा। उस समय तुम उसका

चमड़ा, नाखून, दाँत और चरबी लेकर मेरे पास आना।" इतना कहकर और विष देकर बोधिसत्वने उस गोपालकको विदा किया।

गोपालकने वनमें पहुँचकर जाल लगाया और मृगीको पकड़-कर बोधिसत्वके परामर्शके अनुसार उसके सारे शरीर पर विष मल दिया और तब दो दिनके उपरान्त उसे छोड़ दिया। जब सिंहने उस मृगीको फिर पाया, तब वह स्नेहवश उसका शरीर चाटने लगा। चाटते चाटते ही उसकी मृत्यु हो गई। गोपालक उसका चमड़ा आदि लेकर बोधिसत्वके पास पहुँचा। उसे देखकर बोधिसत्वने कहा—"कभी किसीको स्नेहके वशमें नहीं होना चाहिए। देखो, ऐसा बलवान् सिंह एक मृगी पर अनुरक्त होनेके कारण उसका शरीर चाटता चाटता मर गया।" इसके उपरान्त उन्होंने उपस्थित लोगोंको उपदेश देनेके लिये नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"कभी यह न समझना चाहिए कि यह विश्वसनीय है। किसी पर विश्वास करनेसे ही मनुष्य पर विपत्ति आती है। इसी विश्वासके कारण इस सिंहके प्राण गए हैं।"

इसके उपरान्त बहुत दिनों तक दानादि सत्कार्य करते हुए वे अपने कर्मोंके अनुसार फल भोगनेके लिये परलोकको चले गए।

नामसिद्धिक जातक

प्राचीन कालमें बोधिसत्व तक्षशिलामें एक प्रसिद्ध आचार्य थे। पाँच सौ ब्राह्मण बालक उनके पास रहकर शिक्षा पाते थे। उन छात्रोंमेंसे एक छात्रका नाम था "पापक"। और सब छात्र उसे सदा "पापक पापक" कहकर पुकारा करते थे। पापक सोचने लगा कि मेरा नाम अमंगलसूचक है; इसलिये मुझे अपना और कोई नाम रखना चाहिए। यह सोचकर उसने आचार्यके पास जाकर कहा—"गुरुदेव, मेरा वर्तमान नाम अमंगल-सूचक है। आप मेरा कोई और नाम रख दीजिए।" आचार्यने कहा—"तुम जनपदमें चले जाओ और वहाँ घूम फिरकर अपने लिये कोई अच्छा नाम ढूँढ लो। जब तुम कोई अच्छा नाम ढूँढ लाओगे, तब तुम्हारा वही नाम रख दिया जायगा।"

पापक "जो आज्ञा" कहकर वहाँसे उठा और अपने साथ पाथेय लेकर यात्राके लिये निकल पड़ा। कई गाँवोंमें घूमता हुआ वह एक नगरमें पहुँचा। उस दिन वहाँ जीवक नामक एक व्यक्तिकी मृत्यु हो गई थी। उसके जाति-भाई उसका संस्कार करने जा रहे थे। उन लोगोंको देखकर पापकने पूछा—"क्यों भाई, इस व्यक्तिका नाम क्या था?" उन्होंने कहा—"इसका नाम जीवक था।" पापकने पूछा—"क्या जीवककी भी मृत्यु हो गई?" उन लोगोंने उत्तर दिया—"जीवक भी मरता है और अजीवक भी मरता है। मरना जीना कुछ नामके ऊपर तो निर्भर है ही नहीं। नामसे तो केवल यही जाना जाता है कि किस पदार्थ

या व्यक्तिको क्या कहकर पुकारना चाहिए। जान पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि बहुत ही स्थूल है।"

इतना सुनकर पापकने अपने नामके सम्बन्धमें मध्यम भाव धारण किया। (अर्थात् अब उसमें नामके प्रति न तो विरक्ति ही रह गई थी और न अनुरक्ति ही उत्पन्न हुई थी।) इसके उपरान्त वह नगरमें गया। वहाँ उसने देखा कि एक दासी वेतन उपार्जित करने नहीं लाई है *, जिसके कारण उसका प्रभु और प्रभुकी स्त्री दोनों उसे द्वार पर पटककर मार पीट रहे हैं। उस दासीका नाम था "धनपाली।" पापकने जब रास्तेमें जाते समय देखा कि लोग एक दासीको मार रहे हैं, तब वह वहाँ खड़ा होकर उन लोगोंसे पूछने लगा—"आप लोग इसे क्यों मार रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"आज यह कुछ भी उपार्जन करके नहीं लाई है।" पापकने पूछा—"इसका नाम क्या है?" उत्तर मिला—"धनपाली।" पापक बोला—"हैं! यह क्या! इसका नाम तो है धनपाली; और यह अपने स्वामीको एक दिनका भी वेतन नहीं दे सकती!" उन्होंने कहा—"नाम चाहे धनपाली हो और चाहे अधनपाली, दुर्भाग्यसे कौन बचा सकता है! भला नामसे क्या होता है! नामसे तो केवल मनुष्यों-का अलग अलग परिचय मिलता है। जान पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि बहुत मोटी है।"

उन लोगोंकी यह बात सुनकर पापकने अपने नामके प्रति

* प्राचीन कालमें भारतमें क्रीत दास रखे जाते थे; और वे जो कुछ कमाकर लाते थे, वह उनके स्वामी ले लिया करते थे।

विद्वेष भाव छोड़ दिया और नगरसे बाहर निकलकर चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर उसे एक ऐसा व्यक्ति मिला जो मार्ग भूल गया था। पापकने पूछा—"आर्य, आप क्या कर रहे हैं ?" उसने उत्तर दिया—"भाई, मैं मार्ग भूल गया हूँ। अब मैं यही सोच रहा हूँ कि किस मार्गसे जाऊँ।" पापकने पूछा—"आपका नाम क्या है ?" उसने उत्तर दिया—"मेरा नाम पन्थक है।" पापकने कहा—"हैं ! यह क्या ! जो पन्थक हो, वही पन्थ भूल जाय !" पन्थकने कहा—"चाहे पन्थक हो और चाहे अपन्थक हो, सभी लोग मार्ग भूल जाते हैं। भला नाम इसमें क्या करेगा। नामसे तो केवल व्यक्ति जाने जाते हैं। जान पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि बहुत मोटी है।"

पन्थककी यह बात सुनकर पापकका सारा भाव बदल गया। अपने नामके प्रति उसके मनमें जो द्वेष था, वह सब जाता रहा और वह लौटकर अपने आचार्यके पास पहुँचा। आचार्यने पूछा—"क्या तुम अपने लिये नाम चुन आए ?" पापकने उत्तर दिया—"गुरुदेव, जिसका नाम जीवक होता है, वह भी मरता है; और जिसका नाम अजीवक होता है, वह भी मरता है। धनपाली भी दरिद्र होती है और अधनपाली भी दरिद्र होती है। पन्थक भी मार्ग भूल जाता है और अपन्थक भी मार्ग भूल जाता है। अतः मैंने समझ लिया कि नाममें कोई सार नहीं है। नामसे पदार्थोंका केवल निर्देश होता है, और कोई सिद्धि नहीं होती। सिद्धि तो कर्मसे होती है। इसलिये मुझे अब अपना नाम परिवर्तित करनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा जो नाम है, वही ठीक है।"

शिष्यने जो कुछ देखा और कहा था, उसे सुनकर बोधि-सत्वने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"जीवक मरता है और धनपालीको धन नहीं मिलता। पन्थक मार्ग भूल जाता है और जंगल जंगल भटकता फिरता है। ये सब बातें देखकर पापक घर लौट आया और अब अपने नामसे उसे घृणा नहीं रह गई। भला नाम क्या कर सकता है! मुख्य बात तो यह है कि केवल कर्मसे ही सिद्धि होती है।"

कूटवाणिज जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक वणिकके यहाँ जन्म लिया था। नाम-करणके दिन उनका नाम 'पंडित' रखा गया था। जब बोधिसत्व बड़े हुए, तब उन्होंने एक दूसरे वणिकके साथ, जिसका नाम 'अति पंडित' था, साझेमें व्यापार करना आरंभ किया। दोनों व्यापारियोंने पाँच सौ बैल-गाड़ियाँ मालसे लाद लीं और व्यापार करने निकले। देशांतरमें माल बेचने पर उन्हें खूब लाभ हुआ और वे वाराणसी लौटे। जब लाभके बँटवारेका समय आया, तब 'अति पंडित' ने कहा—"इसमेंसे दो अंश मेरे हैं।" पंडितने पूछा—"भाई तुम दो अंश क्यों माँगते हो ?" अति पंडितने उत्तर दिया—"तुम तो केवल 'पंडित' हो और मैं 'अति पंडित' हूँ; इसी लिये मुझे दो अंश चाहिएँ।" इसपर पंडितने कहा—"भाई देखो, हम दोनों साझेदार हैं। बैल-गाड़ियों तथा व्यापारकी वस्तुओंमें दोनोंका समान भाग था। अतः यह उचित है कि हम लोगोंके भाग समान हों।" पर अति पंडित ने फिर वही उत्तर दिया—"मैं 'अति पंडित' हूँ; इसलिये मुझे दो अंश मिलने चाहिएँ।" इसी प्रकार बात-चीत बढ़ते बढ़ते दोनों आपसमें लड़ने लगे।

'अति पंडित' ने मनमें एक युक्ति सोची। उसने अपने पिताको एक वृक्षके कोटरमें छिपा दिया और उसको समझा दिया कि जब हम दोनों निर्णय कराने आवें, तब यह कहना कि 'अति पंडित' दो अंश पावे। इसके उपरान्त अति पंडित बोधि-

सत्वके पास जाकर बोला—"भाई, हम लोगोंमेंसे हर एकको कितना मिलना चाहिए, इसका निर्णय वृक्ष-देवता ही करेंगे। अतः चलकर उनसे पूछना चाहिए।"

इस प्रकार विचारकर वे दोनों उसी वृक्षके नीचे आए और अति पंडितने प्रार्थना की—"हे वृक्ष–देवता! आप हमारे झगड़ेका निर्णय कर दें।" उस समय अति पंडितके पिताने अपना स्वर बदलकर पूछा—"भाई तुम लोगोंके झगड़ेका कारण क्या है? अति पण्डितने कहा—"हे वृक्ष देवता, मेरा यह साथी तो पंडित है और मैं 'अति पंडित' हूँ। हम दोनोंने एक साथ व्यापार आरंभ किया था। उसमें हम लोगोंको खूब लाभ हुआ। अब आप ही निर्णय कीजिए कि हम लोगोंमेंसे किसको कितना अंश मिलना चाहिए। वृक्षके अंतरसे सुनाई दिया—"पंडितको एक अंश और अति पंडितको दो अंश मिलने चाहिएँ।" बोधि-सत्व मनमें विचार करने लगे कि वास्तवमें वृक्ष देवता ही बोल रहे हैं या इसमें और ही कोई रहस्य है। इसका निश्चय कर लेना चाहिए। उन्होंने सूखे पत्ते और घास इकट्ठी की और उस कोटरमें आग लगा दी। आग सुलग उठी। अति पंडितके पिता-का शरीर झुलस गया और वह वृक्षकी शाखाओंको पकड़कर किसी तरह नीचे उतरता हुआ बोला—"तुम्हारा पंडित नाम ही सार्थक है और यह अति पंडित मूर्ख है; क्योंकि इसकी मूर्खता-के कारण मुझे व्यर्थ ही इतना दुःख सहना पड़ा।"

पश्चात् उन दोनोंने लाभका अंश आपसमें बराबर बराबर बाँट लिया; और वे अपने अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये दूसरे लोकको चले गए।

आम्र जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक उदीच्य ब्राह्मणके कुलमें जन्म लिया था और बड़े होने पर उन्होंने ऋषि प्रव्रज्या ग्रहण की थी। वे पाँच सौ ऋषियोंके साथ हिमालयकी तराईमें निवास करते थे।

एक बार हिमालयमें बहुत अनावृष्टि हुई। सारे जलाशय सूख गए। जलके अभावके कारण पशु पक्षी असीम कष्ट पाने लगे। उनका कष्ट देखकर एक तापसके मनमें दया आई। उन्होंने एक वृक्ष छेदकर द्रोणी बनाई और उसमें जल भरकर पशु पक्षियोंके पीनेके लिये रख दिया। जब उसमेंका जल घट जाता था, तब वे तापस फिर उसमें जल भर देते थे। धीरे धीरे वहाँ इतने पशु-पक्षी जल पीनेके लिये आने लगे कि उस तपस्वीको अपने भोजनके लिये फल मूल आदि एकत्र करनेका भी समय न मिलने लगा। पर वे भूखे रहकर भी उन सबके पीनेके लिये भर भरकर जल लाया करते थे। यह देखकर पशुओंने सोचा कि इन महात्माको हम लोगोंके लिये जलकी व्यवस्था करनेसे ही अवकाश नहीं मिलता, जिससे ये अपने आहारके लिये फल मूल आदि संग्रह नहीं कर सकते और अनाहारके कारण ये बहुत कष्ट पा रहे हैं। हम सब लोग मिलकर इनके लिये आहारका प्रबन्ध करें। आजसे हम लोग जब यहाँ जल पीनेके लिये आया करें, तब अपनी शक्तिके अनुसार इनके लिये भी फल मूल आदि लेते आया करें। उस दिनसे पशु पक्षी आदि उनके लिये नित्य

आम, जामुन, कटहल आदि खट्टे मीठे अनेक प्रकारके फल लाने लगे। धीरे धीरे नित्य उनके पास इतने फल आदि आने लगे, जितनोंसे ढाई सौ छकड़े भरे जा सकते थे। आश्रमके पाँच सौ तपस्वी भी मिलकर वे सब फल नहीं खा सकते थे। जो फल आदि बच रहते थे, वे फेंक दिए जाते थे। यह देखकर एक दिन बोधिसत्वने कहा—"सत्कार्यका भी कैसा विलक्षण परिणाम होता है। केवल एक व्यक्तिके सत्कार्यके कारण पाँच सौ तपस्वी फल मूल संग्रह करनेके परिश्रमसे बच जाते हैं और आश्रममें बैठे बैठे ही उन्हें यथेष्ठ आहार मिल जाता है। अतः सभी लोगोंको सदा सत्कार्य करना चाहिए।" इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"कभी आशाका त्याग मत करो, सदा प्राणपणसे चेष्टा करते रहो। पंडित लोग कभी किसी दशामें हतोत्साह नहीं होते। एक निष्ठावान् ऋषिने स्वयं भूखे रहकर और जल ला लाकर लाखों जीवोंके प्राण बचाए हैं। उन्हींके पुण्यका यह फल है कि यहाँ फलोंके ढेर लग गए हैं, जिनसे इतने तपस्व अपनी क्षुधा मिटाते हैं।"

असम्पदान * जातक

प्राचीन कालमें बोधिसत्व मगधके राजाके श्रेष्ठी थे और राजगृह नगरमें रहा करते थे। उनके पास अस्सी करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं, इसलिये लोग उनको शंखश्रेष्ठी कहा करते थे। उन दिनों वाराणसीमें पिलिय नामक एक और श्रेष्ठी रहा करता था। उसके पास भी अस्सी करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। उसके साथ शंखश्रेष्ठीकी बहुत मित्रता थी। एक बार पिलिय श्रेष्ठी पर बहुत भारी विपत्ति आई। उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। वह दरिद्र और असहाय होकर शंख-श्रेष्ठीसे सहायता पानेकी आशासे अपनी स्त्रीके साथ पैदल चलकर वाराणसीसे राजगृह गया और अपने मित्रके घर पहुँचा। शंखश्रेष्ठीने उसे देखते ही "आओ भाई" कहकर गले लगा लिया और उसका यथेष्ट आदर सत्कार किया। उसके कुछ दिनों तक वहाँ रहनेके उपरान्त शंखश्रेष्ठीने उससे पूछा—"क्यों भाई, तुम्हारा आगमन किस अभिप्रायसे हुआ है?" पिलिय श्रेष्ठीने कहा—"मुझ पर बड़ी भारी विपत्ति आई है। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है। यदि इस समय तुम मेरी सहायता न करोगे, तो मैं किसी प्रकार न बच सकूँगा।"

शंखश्रेष्ठीने कहा—"भला मैं तुम्हारी सहायता न करूँगा!

---

* असम्पदान = अग्रहण या न लेना।

तुम निश्चिन्त रहो।" यह कहकर उन्होंने अपना भाण्डार खोल दिया और उसमेंसे पिलिय श्रेष्ठीको चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं। इसके उपरान्त उन्होंने अपनी स्थावर और जंगम सम्पत्ति, दास, दासियों आदि सभी पदार्थोंके दो समान विभाग किए और उनमेंसे एक भाग पिलियको दे दिया। पिलिय श्रेष्ठी वह विपुल वैभव लेकर वाराणसी चला गया और वहीं निवास करने लगा।

इसके उपरान्त शंखश्रेष्ठी पर भी एक बार उसी प्रकारकी विपत्ति आई। वे उस संकटसे उद्धार पानेका उपाय सोच रहे थे। इतनेमें उनको स्मरण आया कि मैंने एक बार अपने एक मित्रके साथ बहुत उपकार किया था। मैंने अपने सारे वैभवका आधा उसे दे दिया था। यदि मैं उसके पास जाऊँगा, तो वह कभी मुझे विमुख न फेरेगा। मुझे उसीके पास चलना चाहिए। यह निश्चय करके वे अपनी स्त्रीके साथ पैदल ही चलकर राजगृहसे वाराणसी पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा—"यदि तुम राजपथ पर मेरे साथ पैदल चलोगी, तो वह देखनेमें ठीक न होगा। अतः मैं पहले जाता हूँ और वहाँ पहुँचकर तुम्हारे लिये कोई यान भेजता हूँ। तुम उसी यान पर बैठकर अनुचरों आदिके साथ नगरमें प्रवेश करना। जब तक मैं यान न भेजूँ, तब तक तुम यहीं बैठी रहो।" यह कहकर उन्होंने अपनी स्त्रीको एक धर्मशालामें ठहरा दिया और स्वयं अकेले नगरमें प्रवेश करके पिलियके घर पहुँचे। बाहरसे उन्होंने पिलियके पास समाचार भेजा—"राजगृहसे आपके मित्र शंखश्रेष्ठी आए हैं।"

पिलियने उनको अपने पास बुलवा भेजा। किन्तु आने पर उनकी अवस्था देखकर वह अपने आसन परसे नहीं उठा, न अभ्यर्थना की। केवल बैठे बैठे इतना पूछा—"आप कैसे आए ?" शंखश्रेष्ठीने उत्तर दिया—"केवल आपके दर्शनोंके लिये।" पिलियने पूछा—"आप ठहरे कहाँ हैं ?" कहा—"अभी तक तो ठहरनेके लिये कोई स्थान निश्चित नहीं किया है। मैं अपनी स्त्रीको धर्मशालामें ठहराकर सीधा यहाँ चला आया हूँ।" पिलियने कहा—"यहाँ तो आपको ठहरनेमें कष्ट होगा। आप और कहीं जाकर अपने ठहरनेकी व्यवस्था कर लीजिए। वहीं भोजन बनाइएगा और खाइएगा; और तब जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाइएगा और अब कभी मुझसे भेंट मत कीजिएगा।" इतना कहकर उसने एक सेवकको आज्ञा दी—"इन्हें एक आढ़क * भूसा दे दो।" उसी दिन पिलियके यहाँ एक हजार गाड़ियों में भरकर बढ़िया अनाज आया था। उस दुष्टने यह नहीं सोचा कि मैंने जिनसे चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ पाई हैं, उनको मैं केवल एक आढ़क भूसा दिलवाता हूँ।

पिलियके नौकरने एक आढ़क भूसा तौलकर और एक दौरी-में भरकर बोधिसत्वके सामने ला रखा। बोधिसत्व सोचने लगे कि इस पापीने मुझसे चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ पाई हैं और अब यह मुझे केवल एक आढ़क भूसा देता है। मैं यह भूसा लूँ या न लूँ। फिर उन्होंने सोचा कि यह अकृतज्ञ और मित्र-द्रोही समझता है कि मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है और इसी लिये

* आढ़क = एक प्रकार का तोल।

इसने पुरानी मित्रता और मेरा उपकार सब कुछ भुला दिया है। पर यदि मैं इसका यह एक आढ़क भूसा न लूँगा, तो यह कहा जायगा कि मैंने भी मित्रताका सम्बन्ध तोड़ दिया। जो लोग मूढ़ और नीच होते हैं, वही मित्रसे मिलती हुई वस्तुको अल्प और तुच्छ समझकर छोड़ देते हैं और इसी प्रकार मित्रताका नाश हो जाता है। इसलिये मुझे यह भूसा ही लेना चाहिए और इस प्रकार जहाँ तक हो सके, मित्र धर्मकी रक्षा करनी चाहिए। यह सोचकर उन्होंने वह भूसा अपने पल्लेमें बाँध लिया और धर्मशालाकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर उनकी स्त्रीने पूछा–"अपने मित्रसे आपको क्या मिला?" बोधिसत्वने कहा—"मेरे मित्र पिलिय श्रेष्ठीने एक आढ़क भूसा देकर आज ही मुझे विदा कर दिया।" स्त्रीने पूछा—"आपने यह भूसा लिया ही क्यों? क्या चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राओंका यही प्रतिदान है!" यह कहकर वह रोने लगी।

बोधिसत्वने कहा—"तुम रोओ मत। मैंने यह भूसा इसी लिये ले लिया, जिसमें मेरी और उसकी मित्रता बनी रहे, टूट न जाय। तुम व्यर्थ दुःख मत करो।" इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"मित्रकी दी हुई वस्तु यदि तुच्छ भी हो, तो ले लेनी चाहिए। जो व्यक्ति मित्रकी दी हुई चीज नहीं लेता, वह मित्रताका बन्धन तोड़ता है। मेरे मित्रने मुझे थोड़ा सा भूसा ही दिया, पर मैंने उसका मान रखनेके लिये प्रसन्न होकर वह भी ले लिया। क्या कभी कोई मित्रताका भी नाश करता है? अवस्था चिरस्थायी नहीं होती, सदा बदलती रहती है; पर मित्रता स्थायी होती है।"

पर यह गाथा सुनने पर भी उनकी स्त्री रोती ही रही।

शंखश्रेष्ठीने पिलियको जो दास दिए थे, उनमेंसे एक कृषक भी था। वह उस धर्मशालाके पाससे होकर कहीं जा रहा था। बोधिसत्वकी स्त्रीके रोनेका शब्द सुनकर वह अन्दर चला आया और अपने पुराने स्वामी तथा उनकी स्त्रीको देखकर उनके पैरों पर गिर पड़ा और रोता हुआ पूछने लगा—"आप लोग यहाँ कैसे आए?" बोधिसत्वने अपना सारा समाचार उससे कह सुनाया। इसपर उस दासने कहा—"प्रभु, कोई चिन्ताकी बात नहीं है। जो कुछ होना था, वह हो गया।" इसके उपरान्त वह उन लोगोंको अपने घर ले गया। वहाँ उसने उन्हें सुगन्धित जलमें स्नान कराया और अच्छे अच्छे खाद्य पदार्थ उनके आगे रखे। इसके उपरान्त उसने दूसरे दासोंसे कहा—"मेरे पुराने प्रभु यहाँ आए हैं।" इसके कुछ दिनोंके उपरान्त वह अपने साथ बहुत से दासोंको लेकर राजप्रासादके आँगनमें पहुँचा और वहाँ "दुहाई महाराजकी, दुहाई महाराजकी।" कह कहकर चिल्लाने लगा। राजाने उन सब लोगोंको बुलाकर पूछा कि क्या बात है। उन लोगोंने सब बातें कह सुनाईं। उनकी बात सुनकर राजाने दोनों श्रेष्ठियोंको अपने सामने बुलवाया और शंखश्रेष्ठीसे पूछा—"क्या तुमने पिलियको सचमुच चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं?" उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज, जिस समय मेरे मित्र विपद्ग्रस्त होकर राजगृहमें मेरे पास पहुँचे थे, उस समय मैंने उन्हें केवल चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ ही नहीं दी थीं, बल्कि अपनी सारी स्थावर और जंगम सम्पत्ति, यहाँ तक कि दास दासियोंके भी दो समान विभाग करके उनमेंसे एक भाग इनको दे दिया था।"

राजाने पिलियसे पूछा—"क्यों जी, यह बात ठीक है ?" पिलियने उत्तर दिया—"हाँ महाराज, ठीक है ।" राजाने पूछा—"अच्छा, जब ये विपत्तिमें पड़कर सहायता पानेकी आशासे तुम्हारे पास आए, तब तुमने इनका उपयुक्त आदर सत्कार किया था ?" इसपर पिलिय चुप रहा; उसने कोई उत्तर न दिया। राजाने फिर पूछा—"तुमने इनको केवल एक आढ़क भूसा देकर विदा कर दिया था ?" पिलियने फिर भी कोई उत्तर न दिया। इसके उपरान्त राजाने यह निर्णय करनेके लिये कि अब क्या करना चाहिए, अपने अमात्योंके साथ मन्त्रणा की और पिलियको दण्ड देनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दी—"तुम लोग पिलियके घर जाकर उसकी सारी सम्पत्ति ले लो और शंखश्रेष्ठीको दे दो।"

राजाकी यह आज्ञा सुनकर बोधिसत्व कहने लगे—"महाराज, मैं पराया धन नहीं चाहता। मैंने इनको जो कुछ दिया है, आप वही मुझे वापस दिलानेकी आज्ञा दीजिए।" उस समय राजाने आज्ञा दी—"बोधिसत्वने पिलियको जो कुछ दिया है, वह सब उनको लौटा दिया जाय।" बोधिसत्वने पहले पिलियको जो कुछ धन दिया था, वह सब लेकर वे राजगृह लौट आए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपनी सम्पत्तिकी फिरसे सुव्यवस्था की। इसके उपरान्त वे दान आदि सत्कर्म करते हुए यथा समय अपने कर्मोंके अनुरूप फल भोगनेके लिये इहलोक त्यागकर दूसरे लोकमें चले गए।

बभ्रु जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने पाषाण-कुट्टक या संगतराशके घरमें जन्म लिया था; और वयस्क होने पर उन्होंने अपने व्यवसायमें विलक्षण निपुणता प्राप्त की थी।

काशी राज्यके किसी गाँवमें एक बहुत सम्पन्न श्रेष्ठी रहता था। उसके भाण्डारमें चालीस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। उसकी स्त्री मरने पर धनके लोभसे चुहिया बनकर उसी धनके पास रहा करती थी। धीरे धीरे उस श्रेष्ठीके कुलके सभी लोग मर गए; और जब वह श्रेष्ठी भी मर गया, तब मानों वह गाँव उजाड़ हो गया। जिस समयकी यह बात है, उस समय बोधिसत्व उस पुराने गाँवके खण्डहरोंके पत्थर निकाल निकालकर काट रहे थे। जब जब वह चुहिया कुछ खाने-पीनेके लिये इधर उधर निकला करती थी, तब वह बोधिसत्वको देखा करती थी। धीरे धीरे उसके मनमें आया कि मेरा बहुत सा धन व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। यदि इससे मेरी मित्रता हो जाय, तो हम लोग मिलकर इस धनका भोग करें। यह निश्चय करके एक दिन वह मुँहमें एक कार्षापण* लेकर बोधिसत्वके सामने पहुँची। बोधिसत्वने उसे देखकर पूछा—"क्यों जी, आज तुम यह कार्षापण क्यों ले आई हो?" चुहियाने कहा—"तुम इसे ले जाकर अपने खाने-पीनेकी

---

* प्राचीन कालका एक प्रकारका सिक्का।

व्यवस्था करो और मुझे भी थोड़ा मांस ला दो।" बोधिसत्वने "अच्छा" कहकर वह कार्षापण ले लिया और थोड़ा सा मांस लाकर उस चुहियाको दे दिया। चुहिया वह मांस लेकर अपने बिलमें चली गई और वहीं बैठकर खाने लगी। तबसे चुहिया नित्य बोधिसत्वको एक कार्षापण दिया करती थी और वे उसके लिये नित्य थोड़ा मांस लाया करते थे।

एक दिन एक बिल्लीने उस चुहियाको पकड़ा। चुहिया बोली—"तुम मुझे मारो मत, छोड़ दो।" बिल्लीने कहा—"क्यों? मुझे तो इस समय भूख लगी है; और मैं मांस खाना चाहती हूँ।" चुहियाने पूछा—"तुम आज ही मांस खाना चाहती हो या नित्य तुम्हारी मांस खानेकी इच्छा होती है?" बिल्लीने उत्तर दिया—"यदि मिले, तो मैं नित्य ही खाना चाहती हूँ।" चुहियाने कहा—"यदि ऐसी बात है, तो तुम मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हें नित्य मांस खिलाया करूँगी।" बिल्लीने कहा—"अच्छा, लो आज तो मैं तुमको छोड़ देती हूँ। पर इस बातका ध्यान रखना कि मुझे नित्य मांस मिल जाया करे; इसमें त्रुटि न हो।" यह कहकर बिल्लीने चुहियाको छोड़ दिया। उस दिनसे चुहियाने यह नियम कर लिया कि अपने लिये आए हुए मांसके दो विभाग करती थी। उनमेंसे एक भाग आप खाती थी और एक उस बिल्लीको दे दिया करती थी।

कुछ दिनोंके बाद एक दूसरी बिल्लीने फिर उसी चुहियाको पकड़ लिया। चुहियाने उसे भी नित्य मांस देनेका वचन देकर अपने प्राण बचाए। उस दिनोंसे मांसके तीन विभाग

होने लगे, जिनमेंसे एक भाग उस चुहियाको और शेष दो भाग उन दोनों बिल्लियोंको मिला करते थे। इसके उपरान्त फिर एक और बिल्लीने उसे पकड़ा। उसके साथ भी चुहियाकी वही शर्त हो गई। तबसे उसके मांसके चार भाग होने लगे। फिर एक और बिल्लीने उसे पकड़ा। उसके साथ भी वही नियम करके उसने अपने प्राण बचाए। तबसे मांसके पाँच भाग होने लगे। जब चुहियाको भोजन बहुत कम मिलने लगा, तब वह दुर्बल होकर सूखने लगी और उसकी हड्डियाँ दिखाई देने लगीं। एक दिन बोधिसत्वने उससे पूछा—"तुम दिन पर दिन इतनी दुर्बल क्यों होती जा रही हो ?" चुहियाने सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। सब कुछ सुन चुकने पर बोधिसत्वने कहा—"तुमने इतने दिनों तक ये सब बातें मुझसे क्यों नहीं कहीं! अच्छा, कोई चिन्ता नहीं। मैं इसका उपाय कर दूँगा।" उसे सब प्रकारसे आश्वासन देकर बोधिसत्वने उसके लिये बहुत ही बढ़िया और स्वच्छ स्फटिककी एक गुफा बनाई और उससे कहा—"तुम इसी गुफामें रहा करो; और जब कोई बिल्ली तुम्हारे पास मांस माँगने आवे, तब उसे परुष वचन कहकर उत्तेजित किया करो।" चुहिया उसी गुफामें जा बैठी। थोड़ी देर बाद एक बिल्लीने आकर कहा—"मेरा मांस दो।" चुहियाने कहा—"अरे चल! मैंने क्या तुझे नित्य मांस खिलानेकी नौकरी लिखाई है? जा, अपने बच्चेका मांस खा।" बिल्ली जानती नहीं थी कि चुहिया स्फटिककी गुफामें बैठी है। उसने क्रोधमें आकर सोचा कि मैं अभी इस चुहियाको खा जाऊँगी। यह सोचकर वह चुहिया पर झपटी। झपटते ही उसे स्फटिकके कारण छातीमें बहुत

तेज चोट लगी; उसका कलेजा फट गया; आँखें बाहर निकल आई और वह वहीं गिरकर मर गई। इसी प्रकार धीरे धीरे और चारों बिल्लियाँ भी मर गईं। उस दिनसे चुहिया निर्भय होकर चारों ओर घूमने लगी और बोधिसत्वको दो कार्षापण देने लगी। इस प्रकार धीरे धीरे उसने अपना सारा धन उनको देदिया। उस चुहियाके साथ बोधिसत्वकी जीवन भर मित्रता बनी रही और मरनेके उपरान्त कर्मोंके अनुरूप उनकी गति हुई।

स्वर्णहंस जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक ब्राह्मणके कुलमें जन्म लिया था। जब वे वयस्क हुए, तब उनका विवाह उन्हींके समान कुलवाली एक ब्राह्मण कन्याके साथ हुआ; और उससे उन्हें नन्दा, नन्दवती और सुन्दरीनन्दा नामक तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इसके थोड़े दिनोंके उपरान्त बोधिसत्वकी मृत्यु हो गई। अब विवश होकर उनकी स्त्री और तीनों कन्याएँ इधर उधर प्रतिवेशियोंके यहाँ काम-धन्धा करके जीवन निर्वाह करने लगीं।

मानव शरीर त्याग करने पर बोधिसत्वने सुवर्ण हंसके रूपमें जन्म लिया। उस समय उन्हें अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। एक दिन उन्होंने सोनेके परोंसे भरा हुआ अपना विशाल शरीर देखकर सोचा कि मैं पूर्व जन्ममें मनुष्य था; और इस समय मेरी स्त्री तथा कन्याएँ दासी कर्म करके बड़े कष्टसे अपना समय बिता रही हैं। मेरे पर सोनेके परोंके समान हैं। मैं चलकर अपनी स्त्री और कन्याओंको अपना एक एक पर दूँगा। वे इन परोंको बेचकर सुखसे अपना समय बितावेंगी। यह सोचकर वे वहाँसे उड़े और उनके घरमें एक बाँस पर जा बैठे। सुवर्ण हंसको देखकर उन कन्याओंने पूछा—"प्रभु, आप कहाँसे आ रहे हैं?" बोधिसत्वने उत्तर दिया—"मैं तुम लोगोंका पिता हूँ। मृत्युके उपरान्त मैंने सुवर्ण हंसका जन्म पाया है। इस समय मैं तुम लोगोंको देखनेके लिये आया हूँ। अब तुम

विरोचन जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्व सिंहका जन्म ग्रहण करके हिमालयकी तराईमें सोनेकी एक गुफामें रहा करते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गुफामें खड़े होकर जँभाई ली और चारों ओर देखकर वे गरजते हुए मृगयाके लिये बाहर निकले। उन्होंने एक बड़े बैलको मारकर उसका सारा अच्छा मांस खा लिया, एक सरोवरमें उतरकर स्वच्छ जल पीया और तब तृप्त होकर अपनी गुफाकी ओर चल पड़े। उस समय एक गीदड़ इधर उधर आहार ढूँढ रहा था। जब उसने सहसा सिंहको देखा, तब वह इतना घबरा गया कि उसे कहीं भागनेके लिये मार्ग न मिला और वह उसी सिंहके पैरोंके पास गिरकर लोटने लगा। बोधिसत्वने पूछा—"तुम क्या चाहते हो?" गीदड़ने उत्तर दिया—"मैं सेवक बनकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ।" सिंहने कहा—"अच्छी बात है। तुम मेरे साथ चलो और मेरी सेवा शुश्रूषा किया करो। मैं तुम्हें बढ़िया मांस खिलाया करूँगा।" उस गीदड़को अपने साथ लेकर सिंह अपनी कांचन गुफामें चला आया। तबसे गीदड़को सिंहका प्रसाद मिलने लगा और थोड़े ही दिनोंमें वह बहुत हृष्ट पुष्ट हो गया।

एक दिन गुफामें बैठे बैठे बोधिसत्वने गीदड़से कहा—"तुम जाकर पर्वतके शिखर पर खड़े हो। पर्वतके नीचे हाथी, घोड़े, भैंस आदि पशु घूमा करते हैं, उनमेंसे जिस प्राणीका

मांस खानेकी तुम्हारी इच्छा हो, उसका नाम आकर मुझे बतला दो और तब मुझे प्रणाम करके कहो—'प्रभु, आप अपना तेज प्रदर्शित कीजिए।' बस मैं उसे मारकर उसका मांस खाऊँगा और तुम्हें भी दूँगा।" तबसे यही नियम हो गया। गीदड़ नित्य पर्वतके शिखर पर जाकर अनेक प्रकारके पशुओंको देखा करता था; और जब जिसका मांस खानेकी उसकी इच्छा होती थी, तब वह आकर बोधिसत्वको उसका नाम बतला देता था और उनके चरणों पर गिरकर "विरोच सामि"* कहा करता था। बोधिसत्व भी तुरन्त उछलकर भैंसे या हाथी आदि पर जा पड़ते थे और उसे मारकर उसका बढ़िया मांस तो आप खा लेते थे और बचा हुआ अंश गीदड़को दे देते थे। गीदड़ खूब भर पेट मांस खाया करता था और उसी गुफामें सोया करता था। जब इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, तब गीदड़को कुछ अभिमान होने लगा। उसने सोचा—"आखिर मैं भी तो चौपाया हूँ। मैं क्यों इस प्रकार दूसरेके द्वार पर पड़ा पड़ा अपने दिन बिताऊँ। आजसे मैं भी आपही हाथी आदि पशुओंको मारकर उनका मांस खा लिया करूँगा। यह सिंह जो हाथियों आदिको मार लेता है, वह इसी "विरोच सामि" मन्त्रके बलसे। अब मैं भी इस सिंहसे "विरोच जम्बुक" मन्त्र कहलाऊँगा और बड़े बड़े हाथियोंको मारकर उनका मांस खाया करूँगा।" यह सोचकर वह सिंहके पास जाकर बोला—"प्रभु, आप जिन पशुओंका आखेट करते हैं, उनका मांस तो मैं बहुत दिनोंसे

---

* हे सिंह ! अपना तेज प्रकट करो।

खाता आया हूँ। अब मेरी इच्छा होती है कि मैं स्वयं भी किसी हाथीको मारकर उसका मांस खाऊँ। इस कांचन गुफामें जिस स्थान पर आप बैठते हैं, उसी स्थान पर अब मैं बैठूँगा। आप जाकर पर्वतके नीचे घूमनेवाले पशुओं आदिको देखा कीजिएगा और तब आकर मुझसे "विरोच जम्बुक" कहा कीजिएगा। कृपाकर मेरी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकृत कर लीजिए। इसमें कृपणता न कीजिए।" उसकी इस प्रकारकी बातें सुनकर बोधिसत्वने कहा—"देखो, हाथियोंका वध करना केवल सिंहका ही काम है। आजतक कभी किसीने यह न सुना होगा कि किसी गीदड़ने हाथीको मारकर उसका मांस खाया है। तुम ऐसी असंगत इच्छा मत करो। मैं जो सूअर और हाथी आदि मारता हूँ, तुम उन्हींका मांस खाकर चुपचाप यहाँ पड़े रहो।" पर बोधिसत्वकी ये बातें सुनकर भी गीदड़ने अपना पहला विचार नहीं छोड़ा। वह बार बार उनसे वही प्रार्थना करने लगा। जब बोधिसत्वने देखा कि वह किसी प्रकार मानता ही नहीं, तब वे उसकी प्रार्थनाके अनुसार काम करनेके लिये तैयार हो गए और उसे गुफामें छोड़कर पर्वतके शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें एक मत्त हाथी दिखाई दिया। उन्होंने गुफाके द्वार पर पहुँचकर कहा—"विरोच जम्बुक।" वह गीदड़ चट उछलकर गुफामेंसे निकला और जँभाई लेकर चारों ओर देखते हुए उसने तीन बार कहा—"मैं इस मत्त हाथीके सिर पर जा पड़ूँगा।" और वह हाथी पर कूद पड़ा। पर हाथीके सिर पर न पहुँचकर वह उसके पैरोंके आगे जा गिरा। हाथीने तुरन्त अपना दाहिना पैर उठाकर उसके सिर

पर रख दिया, जिससे उसकी खोपड़ी चूर चूर हो गई। इसके उपरान्त हाथीने गीदड़के धड़ पर पैर रखकर उसे भी अच्छी तरह कुचल दिया और उसके ऊपर मल त्याग करके चिंघाड़ता हुआ वनमें चला गया। यह देखकर बोधिसत्वने "विरोच जम्बुक" कहते हुए नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"हाथीके पैरोंसे कुचले जानेके कारण गीदड़की हड्डियाँ चूर चूर हो गईं और उसका मस्तक कीचड़में मिल गया। वाह रे गीदड़! धन्य है तू और धन्य है तेरी वीरता! आज तूने अपना तेज खूब दिखलाया!"

काक जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्व समुद्र देवता थे। एक बार एक कौवा अपनी स्त्रीके साथ आहार ढूँढने के लिये समुद्र तट पर गया था। उस समय कुछ लोग समुद्र तट पर खड़े होकर क्षीर, पायस, मत्स्य मांस, सुरा आदिसे नागकी पूजा कर रहे थे। कौवे और उसकी स्त्रीने उसी पूजाके स्थान पर पहुँचकर खूब क्षीर, पायस और मांस आदि खाया और सुरा पीकर वे दोनों बहुत मत्त हो गए। उसी सुराके मदमें वे दोनों समुद्रमें क्रीड़ा करने लगे और समुद्रकी तरंगोंमें नहाने लगे। उस समय एक तरंग आकर कौवेकी मादाको बहा ले गई और एक बड़ी मछली उस मादाको खा गई। कौवा अपनी स्त्रीके वियोगमें कातर होकर रोने लगा। उसका विलाप सुनकर बहुत से कौवे वहाँ आकर एकत्र हो गए और उससे रोनेका कारण पूछने लगे। उसने कहा—"मेरी स्त्री यहाँ तट पर बैठकर स्नान कर रही थी। इतनेमें वह डूब गई।" यह सुनते ही सब कौवे मिलकर रोने लगे। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि यह समुद्र बहुत ही तुच्छ है। हम लोग अभी इसका जल निकालकर इसे सुखा डालेंगे और तुम्हारी स्त्रीको उसमेंसे निकाल लेंगे। अब वे सब चोंचसे एक एक बूँद जल उठा उठाकर बाहर फेंकने लगे। समुद्रके खारे जलके कारण जब उनका कण्ठ सूखने लगता था, तब वे लोग स्थलमें बैठकर कुछ विश्राम कर लिया करते थे। इसी प्रकार बहुत

दिनों तक चोंचसे समुद्रका जल उठाते उठाते उनके गलेमें बहुत पीड़ा होने लगी और आँखें लाल हो गईं। उन सबकी बहुत ही बुरी दशा हो गई। अन्तमें वे लोग हताश होकर आपसमें एक दूसरे से कहने लगे—"देखो, हम लोग तो समुद्रमें से एक एक बूँद जल उठाकर बाहर फेंकते हैं। पर ज्यों ही हम लोग एक बूँद जल उठाते हैं, त्यों ही उसके स्थान पर दूसरी बूँद आ पहुँचती है और उसके स्थानकी पूर्ति कर देती है। इसलिये हम लोग इस समुद्रको जलहीन नहीं कर सकते।" इसके उपरान्त उन लोगोंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"खारे जलसे मुँहमें जलन होने लगी और गला सूखने लगा; पर यह समुद्र ज्योंका त्यों बना रहा।"

उस समय सब कौवे मिलकर उस मरी हुई मादाके रूपका वर्णन कर करके विलाप करने लगे। वे कहने लगे—"उसकी दुम कैसी सुंदर थी! उसकी आँखें, उसका शरीर, उसका मधुर कण्ठ-रव, सभी बातें मनोहर थीं। उसके ये सब गुण देखकर ही यह चोर समुद्र उसे हरण कर ले गया।" कौओंका इस प्रकारका विलाप सुनकर समुद्र देवता एक बहुत ही भैरव रूप धारण करके उनके सामने आ पहुँचे। वह विकराल रूप देखते ही सब कौवे भाग गए जिससे उनके भी प्राण बच गए। (नहीं तो वे भी समुद्रकी तरंगोंमें डूब जाते।)

पुष्परक्त जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयसे बोधिसत्व आकाश देवता थे। एक बार कार्तिक-रात्रिके उपलक्षमें वाराणसी नगरी बहुत अच्छी तरह सजाई गई थी और उसकी शोभा देवनगरीके समान हो गई थी। उस दिन सभी नगरनिवासी आमोद-प्रमोदमें मस्त हो रहे थे। उस समय एक दरिद्र व्यक्तिके पास केवल दो ही कपड़े थे। उन दोनों कपड़ोंको वह बहुत अच्छी तरह धुलाकर और खूब चुन बनाकर ले आया था।

उसकी स्त्रीने उससे कहा—"मेरी इच्छा होती है कि मैं इसमेंसे एक वस्त्र कुसुमके रंगका रँगाकर पहनूँ और दूसरा ओढ़कर तुम्हारे साथ कार्तिकोत्सव देखने चलूँ।" उसने उत्तर दिया—"भला मेरे समान दरिद्रको कुसुमके फूल कहाँ मिलेंगे। तुम ये सफेद कपड़े ही पहनकर उत्सव देखने चलो।" पर उसकी स्त्रीने हठ करते हुए कहा—"नहीं, मैं बिना कुसुमके रंगसे रँगा कपड़ा पहने उत्सवमें न जाऊँगी।।" पुरुषने कहा—"तुम व्यर्थ क्यों झगड़ा करती हो! मुझे कुसुमके फूल कहाँ मिलेंगे।" स्त्रीने कहा—"यदि तुम चाहो, तो यह कौन बड़ी बात है। राजाके उद्यानमें कुसुमके बहुत से पेड़ हैं।" पुरुषने कहा—"हैं तो अवश्य, पर वहाँ सैकड़ों बलवान् पहरेदार दिन रात पहरा देते और उन पेड़ोंकी रक्षा करते हैं। वहाँ जाना मेरी शक्तिके बाहर है। तुम इस असंगत इच्छाका त्याग कर दो; और इस समय तुम्हारे पास जो कुछ है, उसीसे अपना काम चलाओ।" स्त्रीने कहा-"रातके

समय जब अंधकार हो जाता है, तब ऐसा कौन सा स्थान है, जहाँ पुरुष नहीं जा सकते !"

स्त्रीका बार बार इतना अधिक अनुरोध देखकर अंतमें उसने विवश होकर कहा—"अच्छा, तुम चिंता न करो; मैं ऐसा ही करूँगा।" जब रात हुई, तब वह अपने प्राणोंका मोह छोड़कर नगरसे बाहर निकला और राजाके उद्यानकी चहारदीवारी तोड़-कर उसके अंदर घुसा। पहरेदारोंने दीवार टूटनेका शब्द सुनकर 'चोर चोर'की पुकार मचाई और उसे पकड़ लिया। बहुत कुछ गालियाँ देने और मारने पीटनेके उपरान्त उन्होंने उसे सिकड़ि-योंसे बाँध दिया और प्रातःकाल होने पर राजाके सम्मुख उपस्थित किया। राजाने आज्ञा दी—"इसे ले जाकर सूली पर चढ़ा दो।" उन लोगोंने उस अभागेके दोनों हाथ पीठकी ओर ले जाकर बाँध दिए और भेरी बजाते हुए उसे ले चले। नगरके बाहर पहुँच-कर उन लोगोंने उसे सूली पर चढ़ा दिया। एक तो सूलीकी असह्य वेदना, और दूसरे ऊपरसे कौए आ आकर उसके सिर पर बैठते थे और चोंचसे उसके मस्तक तथा आँखों आदि पर आघात करते थे। परंतु ऐसे कष्टके समय भी वह अपनी पीड़ा भूलकर अपनी स्त्रीकी ही बातका स्मरण कर रहा था और सोच रहा था कि मेरी स्त्री कुसुमके रंगसे रँगा हुआ वस्त्र पहनकर मेरे साथ कार्तिकोत्सव देखने न जा सकी और ईश्वरने मुझे ऐसे सुखसे वंचित रखा। इस प्रकार विलाप करते करते ही वह व्यक्ति मर गया और नरकमें गया।

शृगाल जातक

प्राचीन कालमें जब कि ब्रह्मदत्त वाराणसीमें राज्य कर रहे थे, बोधिसत्वने शृगाल योनिमें जन्म लिया था और वे जङ्गलमें एक नदीके तीर पर रहते थे। उसी नदीके किनारे एक बुड्ढा हाथी मरा हुआ पड़ा था। बोधिसत्व भोजनकी चिंतामें बाहर निकले। मार्गमें उन्हें वह मरा हुआ हाथी दिखाई दिया। वे मनमें सोचने लगे कि ठीक है, आज भोजनकी यथेष्ट सामग्री मिली है। पहले उन्होंने उसका सूँड़ काटकर देखा, पर वह लकड़ीकी तरह कड़ा मालूम हुआ। पश्चात् उन्होंने दाँतको काटा; किंतु उन्हें मालूम हुआ कि यह भी हड्डी ही है; इसलिये इसे काटनेसे भोजनका ठिकाना न लगेगा। इसके उपरान्त उन्होंने कानको आजमाया; पर वह भी सूपकी तरह नीरस था। तब उन्होंने उस हाथीके पेटको काटकर देखा। पर वह भी कोठिला-की नाई ठोस मालूम हुआ; पैर खंभेकी तरह और पूँछ मूसल-की तरह जान पड़ी। बोधिसत्वने मनमें सोचा कि इस तरहसे काम न चलेगा। अतः उन्होंने पूँछके पास मुलायम जगह देख-कर काटना शुरू किया। वहाँ पर उनको रोटीकी तरह मुलायम मांस मिला। वे कहने लगे—"अंतमें मैंने ठीक स्थान पा लिया है।" इस प्रकार बोधिसत्व मांस खाते खाते हाथीके पेटके अंदर जा पहुँचे। वहाँ पर कलेजा, अँतड़ी और मांस खूब खाया और रुधिरसे अपनी प्यास बुझाई। जब रात हुई और बाहर अँधेरा हो गया, तब वे वहीं सो रहे। वे पड़े पड़े विचार करने

लगे कि इस हाथीके पेटमें रहना कितना सुखकर है! यहाँ निवास और भोजन दोनोंका ही समुचित प्रबन्ध है। अतः इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र जानेकी आवश्यकता ही क्या है? इस प्रकार निश्चय करके वे वहीं रहने लगे और खूब भोजन करने लगे। धीरे धीरे ग्रीष्म ऋतुका आगमन हुआ और गरम हवा बहने लगी। जिस मार्गसे बोधिसत्व घुसे थे, वह बंद हो गया और भीतर बिलकुल अँधेरा छा गया। इस प्रकार पृथ्वी और आकाश दोनोंसे पृथक् एक तीसरे स्थानमें ही बोधिसत्वको रहना पड़ा। ऊपरका चमड़ा सूखने पर भीतरका मांस भी सूख गया और रुधिर भी नामशेष हो गया। वे घबराकर बाहर निकलनेका मार्ग ढूँढने लगे, पर उनको उस कैदखानेसे निकलनेका कोई मार्ग नहीं मिला। हाँड़ीमें जिस प्रकार अन्न पकता है, उसी प्रकार हाथीके पेटके अंदर बोधिसत्व भी गरमीके कारण मानों पकने लगे।

सौभाग्यवश दो ही चार दिनों बाद खूब बादल आए और यथेष्ट वर्षा हुई, जिससे हाथीका शरीर भींगकर फिर पहलेकी तरह फूल उठा। जो मार्ग बनाकर बोधिसत्वने हाथीके पेटमें प्रवेश किया था, अब वह मार्ग भी खुल गया और हाथीके पेटके अंदर प्रकाश पहुँचा। वह छिद्र और प्रकाश देखकर बोधिसत्वने कहा—"इतने दिनोंके उपरान्त अब प्राण बचनेकी आशा हुई।" वे कुछ पीछे हटकर हाथीके मस्तककी ओर गए और वहाँसे कूदकर तुरन्त बाहर निकल आए। परंतु बाहर निकलनेके समय रगड़ लगनेके कारण उनके शरीरके बहुत से रोएँ उखड़ गए थे।

हाथीके पेटसे निकलते ही पहले तो बोधिसत्व कुछ दूर तक दौड़, तब रुके और अंतमें बैठकर अपने रगड़ खाए हुए शरीरको देखते हुए कहने लगे—"मेरी यह दुर्दशा किसी दूसरेने नहीं की; लोभके कारण ही मैंने इतना कष्ट पाया है। अब मैं आगेसे कभी लोभके वशमें न होऊँगा और न कभी हाथीके शरीरमें प्रवेश करूँगा।" इसके उपरान्त उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"हाथीके पेटमें फँसकर मैंने अच्छी शिक्षा पाई! अब मैं कभी लोभमें पड़कर इस प्रकारका कष्ट न उठाऊँगा।"

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके बोधिसत्व उस स्थानसे भाग गए। फिर उन्होंने कभी किसी मरे हुए हाथीकी ओर दृष्टिपात नहीं किया और न वे कभी लोभके वशवर्त्ती हुए।

एकपर्ण जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक उदीच्य ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया था। बड़े होने पर उन्होंने तक्षशिलामें तीनों वेदों और समस्त शास्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त करके कुछ दिनों तक अपने घरमें निवास किया था और तब वे ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण करके हिमालय चले गए थे; और वहाँ ध्यान आदिमें अपना समय बिताया करते थे।

हिमालयमें बहुत दिनों तक रहनेके उपरान्त एक बार वे नमक, खटाई आदिका अभाव होनेके कारण वाराणसी आए थे और राजाके उद्यानमें ठहरे थे। वाराणसीमें आनेके दूसरे ही दिन वे तापसोंके योग्य वेश धारण करके भिक्षाके लिये राजद्वार पर पहुँचे। राजाने वातायनमेंसे उन्हें देखा और उनकी चाल ढाल पर प्रसन्न होकर वे सोचने लगे—"इन तापस महात्माकी सब इन्द्रियाँ कैसी शान्त हैं! इनके मनमें भी कैसी अपूर्व शान्ति है! ये जिस प्रकार सिंहके समान और सतर्क होकर चल रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि जहाँ जहाँ ये पैर रखते हैं, वहाँ वहाँ मानों हजार रुपएकी एक एक थैली रखते आते हैं। यह सोचकर राजाने पास बैठे हुए एक अमात्यकी ओर देखा। अमात्यने पूछा—"महाराज, क्या आज्ञा है?" राजाने कहा—"इन तपस्वीको यहाँ ले आओ।" अमात्य "जो आज्ञा" कहकर वहाँसे उठा और बोधिसत्वके पास पहुँचा। उसने उन्हें प्रणाम करके उनके हाथसे भिक्षापात्र ले लिया। बोधिसत्वने पूछा—

"धार्मिकवर, आप क्या चाहते हैं ?" अमात्यने उत्तर दिया— "महाराज आपके दर्शन करना चाहते हैं।" बोधिसत्वने कहा—"मैं तो हिमालयका रहनेवाला हूँ। राजभवनमें तो मैं कभी आया गया नहीं।"

अमात्यने जाकर ये बातें राजासे कहीं। राजाने कहा— "हमारे यहाँ कोई ऐसा तापस नहीं है, जो नित्य आकर हमारे यहाँ भिक्षा ग्रहण करे और हम लोगोंको उपदेश दिया करे। तुम इस तापसको ले आओ। मैं इन्हें अपने कुलका पूज्य बनाकर रखूँगा।" तदनुसार अमात्यने फिर तापसके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और राजाका निवेदन उन्हें कह सुनाया और उन्हें राजभवनमें ले गया।

राजाने बहुत ही सम्मानपूर्वक बोधिसत्वको अभिवादन किया. उन्हें श्वेत छत्रवाले सोनेके सिंहासन पर बैठाया और अपने लिये जो भोजन प्रस्तुत हुआ था, वह उनके सामने रखा। जब बोधिसत्व कुछ विश्राम कर चुके, तब राजाने उनसे पूछा— "आपका आश्रम कहाँ है ?" बोधिसत्वने कहा—"महाराज, मैं हिमालयमें रहता हूँ।" राजाने पूछा—"अब आपका कहाँ जानेका विचार है ?" बोधिसत्वने कहा—"इस समय मैं वर्षा ऋतुमें निवास करनेके योग्य स्थान ढूँढ़ रहा हूँ।" राजाने कहा— "तो फिर आप कृपाकर मेरे उद्यानमें ही ठहरें।" जब बोधिसत्वने उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत कर ली, तब राजाने भोजन किया और उन्हें अपने साथ उद्यानमें ले गए। वहाँ उन्होंने बोधिसत्वके लिये एक सुन्दर पर्णशाला बनवा दी। उस पर्णशालाका एक अंश तो ऐसा था जो दिनके समय रहने योग्य

था; और दूसरा ऐसा था जो रातके समय रहने योग्य था। तापसोंको जिन जिन चीजोंकी आवश्यकता होती है, राजाने उन सब चीजोंकी भी वहाँ व्यवस्था कर दी और उद्यानपालको बोधिसत्वकी देखभालका भार सौंपकर वे अपने प्रासादको चले गए। तबसे बोधिसत्व उसी उद्यानमें रहने लगे। राजा नित्य दिनमें दो बार उनके दर्शनके लिये उद्यानमें आया करते थे।

राजाका एक पुत्र था जो बहुत ही क्रोधी, उग्र, निष्ठुर और दुष्ट स्वभावका था। न तो राजा ही उसका दमन कर सकते थे और न राजपरिवारके और किसीसे वह दबता था। सब अमात्यों, ब्राह्मणों और गृहपतियों आदिने एक बार एकत्र होकर क्रोध-पूर्वक कुमारसे कह दिया था—"आप इस प्रकारका अनुचित व्यवहार न किया कीजिए। आपका यह आचरण बहुत ही गर्हित है।" परंतु इसका भी कोई फल नहीं हुआ। जब बोधि-सत्व आए, तब राजाने सोचा कि इन परम पूज्य शीलसम्पन्न तपस्वीके बिना और कोई मेरे पुत्रकी मति परिवर्तित नहीं कर सकता; इसलिये अपने पुत्रके उद्धारका भार इन्हीं पर देना चाहिए। यह निश्चय करके एक दिन वे कुमारको अपने साथ लेकर बोधिसत्वके पास पहुँचे और बोले—"महाराज, मेरा यह पुत्र बहुत ही निष्ठुर और उग्र स्वभावका है। मैं किसी प्रकार इसका दमन नहीं कर सकता। आपही इसे ठीक मार्ग पर लानेका कोई उपाय कीजिए।" यह कहकर उन्होंने कुमारको बोधिसत्वके हाथ सौंप दिया और आप प्रासादको चले गए। बोधिसत्व कुमारको अपने साथ लेकर उद्यानमें टहलने लगे।

इतनेमें उन्होंने देखा कि एक स्थान पर नीमका एक कल्ला निकल रहा है, जिसमें दोनों ओर दो छोटी पत्तियाँ लगी हैं।

बोधिसत्वने कहा—"कुमार, जरा इसमेंसे एक पत्ती तोड़कर खाओ और देखो कि इसका स्वाद कैसा है।" कुमारने उसे खाते ही "छी छी" करते हुए थूक दिया। बोधिसत्वने पूछा—"क्यों कुमार, क्या हुआ ?" कुमारने कहा—"महाराज, यह छोटा सा वृक्ष तो अभीसे हलाहल है। जब यह बढ़कर बड़ा होगा, तब न जाने इसके कारण कितने मनुष्योंके प्राण जायँगे।" यह कहकर उसने नीमका वह कल्ला उखाड़ लिया और उसे हाथमें मलकर फेंकते हुए नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"जिस वृक्षका अंकुर ही विषके समान है, वह जब बढ़ेगा, तब उसका फल खाकर सैंकड़ों आदमी मरेंगे।"

यह सुनकर बोधिसत्वने कहा—"कुमार, तुमने यह सोचकर नीमका यह वृक्ष उखाड़ डाला कि जब यह अभीसे इतना तीता है, तब बढ़ने पर न जाने इसकी और क्या दशा होगी। इस कल्लेके साथ तुमने जो कुछ किया है, इस राज्यके निवासी भी तुम्हारे साथ वही करेंगे। वे सोचेंगे कि कुमार इस बाल्यावस्थामें ही जब इतने उग्र और दुष्ट स्वभावके हैं, तब बड़े होने और राजपद पाने पर तो इनकी प्रकृति और भी भीषण हो जायगी। वे सोचेंगे कि इनके द्वारा हमारी कुछ भी उन्नति या उपकार न होगा; इसलिये वे लोग तुम्हें राज्य न देंगे और इस नीमके कल्लेके समान उखाड़कर राज्यसे दूरकर देंगे। इसलिये मैं तुमको समझा देता हूँ। इस नीमके कल्लेका उदाहरण देखकर ही तुम सँभल जाओ

और शिक्षा ग्रहण करो। आजसे तुम अपना स्वभाव शान्त करो और सब लोगोंके साथ सज्जनतापूर्ण व्यवहार किया करो।"

बोधिसत्वका यह उपदेश सुनकर कुमारकी बुद्धि ठिकाने आ गई। तबसे वे बहुत ही शान्त स्वभावके हो गए और सब लोगोंके साथ बहुत ही सज्जनताका व्यवहार करने लगे। जब उनके पिताकी मृत्यु हो गई और उन्होंने राजपद पाया, तब दान आदि पुण्य कृत्योंका अनुष्ठान करते हुए वे अपने कर्मोंके अनुरूप फल भोगनेके लिये परलोकको चले गए।

विड़ाल* जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने चूहेकी योनिमें जन्म धारण किया था। वे आकारमें सूअरके शावकके समान और बहुत बुद्धिमान् थे। उनके पास कई सौ चूहे रहा करते थे और वे उन सबको अपने साथ लेकर जंगलोंमें घूमा करते थे।

एक दिन एक गीदड़ने इन सब चूहोंको इधर उधर घूमते हुए देखकर मनमें सोचा कि इन सबको किसी प्रकार छलकर खा जाना चाहिए। यह सोचकर वह चूहोंके बिलके पास ही जाकर एक पैरसे खड़ा हो गया और सूर्यकी ओर मुँह करके वायु पान करने लगा। जब बोधिसत्व आहार ढूँढ़नेके लिये बाहर निकले और उन्होंने उसे इस अवस्थामें खड़े देखा, तब उन्होंने सोचा कि जान पड़ता है कि यह गीदड़ सदाचार-सम्पन्न है; इसलिये उन्होंने उसके पास जाकर पूछा—"महाशय, आपका नाम क्या है ?" गीदड़ने उत्तर दिया—"मेरा नाम धार्मिक है।" बोधिसत्वने पूछा—"आप भूमि पर चारों पैर न रखकर केवल एक ही पैरसे क्यों खड़े हैं ?" गीदड़ने कहा—"यदि मैं अपने चारों पैर पृथ्वी पर रख दूँगा, तो वह मेरा भार न सह सकेगी; इसलिये मैं एक ही पैर पर खड़ा हूँ।" बोधिसत्वने पूछा—

---

* इस जातकमें तो सब जगह गीदड़का ही नाम है, पर गाथामें बिल्लाका नाम आया है; इसलिये इसे विड़ाल जातक कहते हैं।

"आपने अपना मुँह क्यों खोल रखा है?" गीदड़ने कहा—"मैं अन्न नहीं खाता, केवल वायु खाकर रहता हूँ; इसी लिये मैंने अपना मुँह खोल रखा है।" बोधिसत्वने पूछा—"आप सूर्यकी ओर क्यों देख रहे हैं?" गीदड़ने कहा—"उनको नमस्कार करनेके लिये।" गीदड़की ये सब बातें सुनकर बोधिसत्वने मनमें सोचा कि इस गीदड़में भी कैसी अपूर्व साधुता है। उस दिनसे वे नित्य सबेरे और सन्ध्या अपने साथ सब चूहोंको लेकर उस गीदड़ सन्यासीको प्रणाम करनेके लिये जाने लगे। पर जब सब चूहे उस गीदड़को प्रणाम करके लौटने लगते थे, तब वह सबके अन्तवाले चूहेको चुपचाप पकड़कर खा जाया करता था और इस प्रकार मुँह बना लेता था कि जिसमें मालूम हो कि वह कुछ जानता ही नहीं। इस प्रकार धीरे धीरे चूहोंकी संख्या घटने लगी। यह देखकर चूहे सोचने लगे कि पहले इसी बिलमें हम लोगोंको रहनेके लिये स्थानका संकोच होता था; हम लोग इसमें ठसाठस भरे रहा करते थे। पर अब यहाँ इतना स्थान खाली क्यों रहता है; अब यह बिल पहलेको भाँति हम लोगोंसे भर क्यों नहीं जाता। इसका कारण क्या है! जब उनकी समझमें कोई कारण नहीं आया, तब उन लोगोंने यह बात बोधिसत्वसे कही। बोधिसत्व भी सोचने लगे कि चूहोंके घटनेका कारण क्या है। किसी प्रकार गीदड़ पर उनका सन्देह हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि इस बातका ठीक ठीक पता लगाना चाहिए। उस दिन जब वे गीदड़को प्रणाम करके लौटने लगे, तब उन्होंने और सब चूहोंको तो आगे रखा और आप सबके पीछे रहे। गीदड़ने बोधिसत्वको ही पकड़ना चाहा। बोधिसत्व उसकी चेष्टा

देखकर उसका भाव समझ गए। उन्होंने घूमकर उससे कहा—"मैं देखता हूँ कि तुम्हारा यह व्रतानुष्ठान धर्मके लिये नहीं है। तुम प्राणियोंकी हिंसा करनेके लिये यह धर्मकी ध्वजा लिए फिरते हो।" यह कहकर उन्होंने नीचे लिखे आशयकी गाथा कही—

"तुम धर्मकी ध्वजा लेकर सब लोगोंको ठगते हो और छिपे छिपे पापाचरण करते हो। तुम्हारे अन्दर तो विष है और मुँह पर मधुर वचन हैं। यही विड़ाल व्रतके लक्षण हैं।"

इतना कहते हुए बोधिसत्व कूदकर उस गीदड़की गरदन पर जा पहुँचे और इस जोरसे उसे काटा कि उसका गला दो टुकड़े हो गया और वह तुरन्त मर गया। उनके साथ जितने चूहे थे, उन सबने उस गीदड़का मांस खाकर घरका रास्ता लिया। तबसे सब चूहे निर्भय होकर रहने लगे।

संजीव जातक

प्राचीन कालमें वाराणसीके राजा ब्रह्मदत्तके समयमें बोधिसत्वने एक सम्पन्न ब्राह्मणके घरमें जन्म लिया था। जब वे बड़े हुए, तब उन्होंने तक्षशिलामें जाकर खूब विद्याध्ययन किया और सब विद्याओंमें पारंगत हो गए। पश्चात् काशीमें आकर वे अध्यापनका कार्य करने लगे। उनके पास ५०० ब्राह्मण विद्यार्थी पठन-पाठन करते थे। इन शिष्योंमेंसे एकका नाम संजीव था। बोधिसत्वने उस शिष्यको मरे हुए व्यक्तिको जिलानेका मंत्र सिखला दिया था; पर उसका प्रतीकार करनेवाला दूसरा मंत्र नहीं बतलाया था। एक दिन अपने कुछ साथियोंको लेकर वह जंगलमें लकड़ियाँ लानेके लिये गया। वहाँ एक मरे हुए व्याघ्रको देखकर उसे संजीवन मंत्रकी याद आई और उसके बल पर वह घमंडके साथ अपने साथियोंसे बोला—"देखो, मैं इस मरे हुए बाघको अभी जीवित करता हूँ।" साथियोंने कहा—"क्या मरा हुआ जीव भी कभी जीवित हुआ है ? तुम्हारे किए यह न हो सकेगा।" संजीवने कहा—"तुम लोग खड़े रहकर देखो, मैं इसे अभी जीवित करता हूँ।" साथियोंने उत्तर दिया—"भाई देखो, यदि ऐसा कर सकते हो तो करो।" यह कहकर वे सब एक वृक्ष पर चढ़ गए।

संजीवने कुछ मंत्र पढ़कर मिट्टीका एक ढेला उस मरे हुए बाघ पर फेंका। तुरंत ही बाघ जीवित होकर एक दम संजीवकी ओर झपटा और उसका गला पकड़कर उसने उसे मार डाला।

पश्चात् बाघ भी गिरकर मर गया। दोनोंके मृत शव पास ही पास पड़े रहे।

जब संजीवके साथी लकड़ियाँ लेकर घर लौटे, तब उन्होंने आचार्यसे सब वृत्तान्त कहा। बोधिसत्वने विद्यार्थियोंसे कहा—"मेरे प्रिय शिष्यो, देखो, संजीवने एक दुष्टके ऊपर अनुचित अनुग्रह किया और अनुपयुक्त स्थलमें बल प्रदर्शित किया, जिसका फल उसको स्वयं ही भोगना पड़ा। तुम लोग कभी ऐसे भ्रममें न पड़ना।" यह कहकर उन्होंने नीचे लिखे आशय-की गाथा कही—

"दुष्टके साथ चाहे जितना उपकार करो, उसकी चाहे जितनी सहायता करो, किंतु अवसर पाने पर वह उसी प्रकार तुम्हारा नाश करेगा, जिस प्रकार संजीवन द्वारा जिलाए हुए बाघने उसी पर आक्रमण करके उसको मार डाला।"

इस प्रकार बोधिसत्वने शिष्योंको उपदेश दिया और दान धर्ममें पवित्र जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये वे लोकांतरको गए।

हिन्दी भाषाका विकास

(लेखक—श्रीयुक्त बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०)

यदि आप हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति और विकासका पूरा और विस्तृत इतिहास जानना चाहते हों, तो यह पुस्तक अवश्य पढ़िए। अब तक इस सम्बन्धकी हिन्दीमें जो पुस्तकें निकल चुकी हैं, उन सबकी अपेक्षा अनेक बातोंमें यह पुस्तक कहीं श्रेष्ठ है। विषयको अधिक स्पष्ट और सुबोध करनेके लिये इस पुस्तकमें आर्योंके पहले पहल भारतमें आकर बसनेके समयसे लेकर अब तककी सब भाषाओंका संक्षिप्त और आधुनिक हिन्दीका बहुत ही विस्तृत और मार्मिक विवेचन किया गया है। इसमें वैदिक भाषा, संस्कृत, पाली, प्राकृत, पैशाची और अपभ्रंश आदि भाषाओंका संक्षिप्त इतिहास और विकास दिया गया है और तब बतलाया गया है कि हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति और विकास किस प्रकार हुआ है। अवधी, व्रज भाषा, बुँदेली और खड़ी बोली आदिका विवेचन करके उनका तारतम्य भी दिखलाया गया है। हिन्दी पर विदेशी अथवा प्राचीन भाषाओंका क्या प्रभाव पड़ा है, उसका नादात्मक विश्लेषण और स्वराघात कैसा है, आदि बातों पर भी पूरा विचार किया गया है। विशेषतः विभक्तियों और क्रियाओं आदिका बहुत ही उत्तम विवेचन किया गया है। विद्यार्थियों और हिन्दी भाषाका वास्तविक स्वरूप जाननेवालोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। पृष्ठ संख्या १३७, मूल्य केवल ॥=)

रामचन्द्र वर्म्मा,

साहित्य रत्नमाला कार्यालय, काशी।

वैज्ञानिक साम्यवाद

यह पुस्तक श्रीयुक्त विलियम पाल रचित Scientific Socialism नामक पुस्तिकाका अनुवाद है। साम्यवाद आजकल-के संसारव्यापी प्रधान आन्दोलनोंमेंसे एक आन्दोलन है और उसका कुछ न कुछ परिचय रखना सभीके लिये आवश्यक है। इस पुस्तकमें यह बतलाया गया है कि साम्यवाद कोरा तर्क या कल्पना ही नहीं है, बल्कि वह आधुनिक व्यापार-शैलीका वैज्ञानिक और अनिवार्य विकसित रूप है। इसमें संक्षेपमें आधुनिक पूँजीदारीके दोष दिखाते हुए बतलाया गया है कि साम्यवादके सिद्धान्तोंका प्रचार क्यों आवश्यक और अनिवार्य है। सम्पत्तिका आरम्भ और राज्यका उदय कैसे हुआ, पूँजीदारीका पतन क्यों हो रहा है, आधुनिक सामाजिक अवनतिके क्या कारण हैं और उसे दूर करनेका क्या उपाय है, साम्यवादी श्रमजीवी दलका क्या उद्देश्य है और वह किन किन क्षेत्रोंमें क्या क्या काम करना चाहता है, उसके विधायक कार्य क्या क्या हैं और मजदूरोंकी शिक्षा आदिकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए, इत्यादि बातों पर इसमें बहुत अच्छा विचार किया गया है। सब लोगोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ≡)

रामचन्द्र वर्म्मा,
साहित्य रत्नमाला कार्यालय, काशी।